# कुरुक्षेत्र

जनवरी, 1988 मूल्य 2 रुपये

आदिवासी महिलाएं

आदिवासी पुल निर्माण में कार्यरत

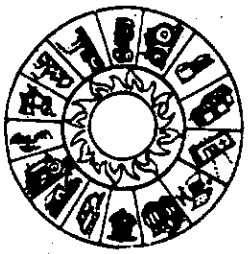

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

**दूरभाष : 384888**

**एक प्रति : 2.00 रु.**

**वार्षिक चन्दा : 20 रु**

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : राजेन्द्र कुमार टंडन

**चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार**

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हों।

# कुरुक्षेत्र

## ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

**वर्ष-33** **माघ-पौष** **अंक-3**

**इस अंक में**

**गुज्जर-हिमालय के यायावर** 2
डा. श्याम सिंह शशि

**राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र शिक्षा में अभिनव प्रयोगों की प्रतीक्षा में** 4
डा. हरिवल्लभ त्रिवेदी

**ग्राम अधिग्रहण योजना** 8
हेम राज शर्मा

**उत्तर प्रदेश में आदिवासियों की समस्याएं एवं समाधान** 10
भूपेन्द्र नाथ मिश्र

**आखिरी सड़क** 11
विनोद पाराशर

**प्रदूषण अंकेक्षण** 16
डा. एन.पी. अग्रवाल तथा सतीश मोहन गोयल

**ग्राम्य विकास** 19
डा. राकेश अग्रवाल

**गोंड-मध्य भारत की खेतिहर जनजाति** 20
एस. अलमेलू

**आदिवासी समाज : कल और आज** 24
जगदीश सिंह बलहारा

**आदिम जनजाति सहरिया समाज और विकास** 26
प्रभात कुमार सिंघल

**सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों का विकास** 28
बी.पी. शर्मा

**आदिवासी विकास की वैकल्पिक योजनाएं एक मूल्यांकन** 32
डा. राजेन्द्र मेनारिया

**आदिवासी प्रगति पथ पर** 34
डा. राज

**मध्य प्रदेश में जनजातीय लोगों में शिक्षा का प्रसार** 38
डा. एस.एस. पवार तथा पी. भुवेन्द्रन

# गुज्जर-हिमालय के यायावर

डा. श्याम सिंह शशि

राजपूताना, गुजरात और मालवा जहां "गुर्जर" या इससे संबद्ध किसी अन्य नाम से ज्ञात लोगों, राजाओं और महलों के चिह्न मिले थे, छठी सदी से पहले निर्जन स्थान नहीं थे। आरम्भिक काल में ही आर्य-द्रविड़ जाति के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा अन्य आदिवासी जातियां वहां रहती थीं और विदेशी हूण अथवा गुज्जर वहां आए तो विजेता जातियों की तरह जीने, बसने और वहां विद्यमान आबादी में घुलमिल जाने के लिए। राजपूताना के सभी राजपूत, जिन्हें यह नाम मुस्लिम इतिहासकारों ने दिया, हूण और गुर्जर नहीं हो सकते जिन्होंने मूल क्षत्रियों को बाहर खदेड़ दिया और उनकी मान्यताओं, परम्पराओं और संस्कृति को एक लबादे की तरह ओढ़, यदि ऐसा हुआ होता तो पुराने क्षत्रिय आखिर कहां गये?

यही सवाल कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी ने अपने एक लेख में उठाया था और इसका जवाब जम्मू-कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के गुज्जरों के पास था। गुज्जर यायावर लोग हैं जो अपने मवेशियों के लिए चारे की तलाश में, खास तौर पर सर्दियों में अपना घरबार छोड़ कर निकल पड़ते हैं। ये राजपूताना के वही क्षत्रिय थे जिन्हें इस्लाम धर्म कबूल करना पड़ा और अब यायावर या अर्द्ध खानाबदोश की जिन्दगी जीते हैं।

गुज्जर हिमाचल प्रदेश और जम्मू-कश्मीर की एक खूबसूरत एवं मुख्यतः पशुपालक जनजाति है। वे जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते रहते हैं। गद्दियों के विपरीत, वे सालों भर अपने मवेशियों के लिए चरागाह की तलाश में घूमते रहते हैं। उनकी झोंपड़ियां यहां-वहां देखी जा सकती हैं। वे जंगलों में उपलब्ध लकड़ियों और घासफूस से अपने डेरे बनाते हैं। ये झोंपड़ियां अस्थायी होती हैं और उनके स्थान से हटते ही नष्ट कर दी जाती हैं।

जब यायावरों से उनके देशांतरण के बारे में पूछा जाता है तो वे महज इतना बताते हैं कि उनके पूर्वज गुजरात से आए थे। लेकिन किसी को भी यह नहीं मालूम कि किस साल वे अपने मूल घरों को छोड़ कर निकले थे। यह भी निश्चित रूप से मालूम नहीं कि उनके कश्मीर घाटी में प्रवेश करने से पहले ही उन्हें इस्लाम धर्म कबूल कराया था, क्योंकि इस्लाम धर्म चौदहवीं सदी में कश्मीर में आया था और सूफी संतों ने इसे घाटी के विभिन्न भागों में फैलाया था।

एक गुज्जर स्त्री अपने बच्चों, पति और परिवार के बुजर्ग लोगों के साथ पैदल ही हिमालय की चोटियों को पार करती है। इन घाटियों की कठिन यात्रा के दौरान वह अपने बच्चे को गोद में बांधे रखती है और उसके सिर पर दूध तथा मक्खन से भरे दो चार मिट्टी के घड़े होते हैं तथा एक हाथ में होती है छड़ी। अगर यात्रा के दौरान गुज्जर स्त्री को प्रसव वेदना उत्पन्न होती है तो एक सप्ताह के लिए अपनी यात्रा बीच में रोक देती है। उसे दाई या दवा भी उपलब्ध नहीं होती। एक सप्ताह के विश्राम के बाद वह अपनी यात्रा फिर शुरू करती है और मंजिल तक पहुँचने के पहले वह कहीं नहीं रुकती। ऐसे देशांतरों के दौरान इन जनजातियों में से कई स्त्रियों को प्रसव वेदना झेलनी पड़ी है। गुज्जरों के लिए कठिनाई उस समय पैदा होती है जब वन अधिकारी उनकी भैंसों को किन्हीं नदी-पुलों से गुजरने की अनुमति नहीं देते, क्योंकि ढाई सौ किलोग्राम या उसी के लगभग वजन वाली भैंसों से ये पुल नष्ट हो सकते हैं। चूंकि गुज्जर अपने मवेशियों को छोड़ नहीं सकते, इसलिए उन्हें लम्बा मार्ग अपनाना पड़ता है।

गुज्जर गर्मियों के दौरान धार (ऊंचे पहाड़ों) पर चले जाते हैं और सर्दियों में नीचे उतर आते हैं। पुरुष मवेशी चराते हैं जबकि महिलायें खाना पकाती हैं, मवेशियों का दूध दुहती हैं और घी तैयार करती हैं। गद्दियों के समान गुज्जर, सीधे-साधे मजबूत, कठिन परिश्रम करने वाले और ईमानदार होते हैं। वे शांतिप्रिय, शिष्ट, सामाजिक और मेहमाननवाज होते हैं। उन्हें अपने मवेशियों, जंगलों, झोंपड़ियों और उन रास्तों से प्यार होता है, जहां से वे गुजरते हैं।

गुज्जरों को उनकी विशेष दाढ़ी और वस्त्रों से पहचाना जा सकता है। वे अपने सिर पर एक खास किस्म की पगड़ी

बांधते हैं, जो राजपूतों की पगड़ी से मिलती जुलती है। महिलाएं कश्मीर की मुसलमान महिलाओं की तरह कुर्ता और चूड़ीदार पाजामा पहनती हैं। मगर मुस्लिम महिलाओं की तरह पर्दा नहीं करतीं या बुर्का नहीं पहनती हैं।

गुज्जरों का मुख्य आहार सीधा-सादा मगर पौष्टिक होता है। उनके आहार में मक्का, घी और दूध शामिल होता है। यह आश्चर्य की बात है कि अधिकांश गुज्जर न तो कोई शराब लेते हैं और न ही कोई उत्तेजक पदार्थ। हाल की यात्रा के दौरान मेरी भेंट कुछ ऐसे लगभग एक दर्जन गुज्जरों से हुई है जिनकी वय एक सौ वर्ष से अधिक थी और जिन्होंने कभी शराब को हाथ तक नहीं लगाया था। चाहे वे बर्फीले रास्ते से गुजरें या घने जंगलों से, उन्हें कभी शराब आदि की जरूरत महसूस हीं नहीं होती।

मैं देहरादून जिले के एक जनजातीय क्षेत्र में भी गया। वहाँ मैंने देखा कि कुछ गुज्जर परिवार अपनी भैंसों और बकरियों के लिए चारे की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को आ जा रहे हैं। ये गुज्जर जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश से आए थे और अपने मवेशियों को चराने के लिए निचली घाटियों में घुस रहे थे।

हाल की यात्रा के दौरान, संयोगवश मेरी भेंट अली मोहम्मद नामक एक गुज्जर से हुई। उससे मेरी पहली भेंट बीस वर्ष पहले चम्बा घाटी की यात्रा के दौरान हुई थी। उस समय वह एक छोटा बालक था और पढ़ाई का बहुत इच्छुक था। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि पढ़ने की इच्छा के बावजूद उसकी शिक्षा नहीं हो पायी, क्योंकि वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहा था और हमेशा सफर में रहने के कारण शिक्षा संभव नहीं थी। मुझे बताया गया कि उसकी शादी हो चुकी है, बच्चे भी हैं और वह अन्य गुज्जरों की तरह मवेशियों की देखभाल करता हुआ खानाबदोश की जिन्दगी गुजार रहा है। इससे यह और भी साबित होता है कि उनके रहन-सहन में परिवर्तन लाने और उनकी स्थिति को सुधारने के लिए अधिक कुछ नहीं किया गया है। मैं घाटियों में रहने वाले कुछ अन्य गुज्जरों और आदिवासियों से मिला और मैंने नमूने के तौर पर कुछ समाजविज्ञानी सर्वेक्षण किये। मुझे इन इलाकों में बहुत धीमी या नहीं के बराबर प्रगति नजर आई। विकास के बारे में पूछने पर मुझे बताया गया कि बिचौलियों ने किस तरह केन्द्र और राज्य सरकारों के विभिन्न कल्याण विभागों द्वारा उपलब्ध करायी गयी अच्छी चीजों को हथिया लिया है। यह बात उन्होंने काफी हिचकिचाहट के साथ बतायी। न केवल ये लोग बल्कि जौनसार बाबर और अन्य क्षेत्रों के आदिवासी भी बिचौलियों और अन्य शोषणकर्त्ताओं के भय से अन्याय अथवा शोषण की ऐसी घटनाओं के बारे में बताना नहीं चाहते हैं।

गुज्जर किसी एक स्थान पर अधिक समय के लिये ठहर नहीं सकते। इसलिए उनके लिए आरम्भ की गयी कल्याण योजनाएँ आम तौर पर विफल रही हैं। खानाबदोशी किसी भी राष्ट्र के लिए एक कलंक है, उसके लिए क्रमवार परिवर्तन जरूरी हैं।

निम्नांकित सुझावों के क्रियान्वयन पर विचार किया जा सकता है, ताकि वे बेहतर और स्थायी जीवन बिता सकें तथा राष्ट्र की जीवनधारा में शामिल हो सकें:-

1. उन्हें स्थायी आवास के लिए जमीन दी जानी चाहिए।

2. उनके मवेशियों के लिए चरागाह की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. अगर डेयरी विशेषज्ञ उन्हें उचित मार्ग निर्देशन दें, तो अधिक दूध प्राप्त किया जा सकता है। उन्हें अधिक डेयरियाँ स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सहकारी आधार पर एक मौन क्रान्ति लाई जा सकती है।

4. उनके बच्चों की सही ढंग से शिक्षा के लिए स्कूल और बोर्डिंग हाऊस खोले जाने चाहिए।

5. आदिम जाति सेवा संघ, पर्वतीय आदिम जाति सेवक संघ और अन्य सामाजिक एवं जनजातीय एजेंसियों को अपनी गतिविधियों का क्षेत्र-विस्तार करने के लिए कहा जाना चाहिए

6. उनके डेरों में चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

7. अधिकारियों को उनकी जरूरतों के प्रति सहानुभूति का रुख अपनाना चाहिए।

8. उनके मकानों के निर्माण के लिए उदार वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

9. सीमाओं की रक्षा के लिए उन्हें सेना में भर्ती किया जाना चाहिए क्योंकि वे अन्य लोगों की अपेक्षा सीमाओं से अच्छी तरह परिचित हैं।

10. किसी उच्च स्तरीय समिति द्वारा गुज्जरों के लिए कल्याणकारी योजनाओं का समय-समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

□ अनुवाद : सुमित मिश्र

# राजस्थान के आदिवासी क्षेत्र

# शिक्षा में अभिनव प्रयोगों की

# प्रतीक्षा में

डा. हरिवल्लभ त्रिवेदी

बृहतर मेवाड़ क्षेत्र के दक्षिणांचल में अरावली की उपत्यकाओं में बसे डूँगरपुर तथा बांसवाड़ा जिले राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र का प्रमुख प्रतिनिधित्व करते हैं, जबकि उदयपुर जिले की कोटड़ा, झाडोल, खेरवाड़ा, सराड़ा, सलूम्बर, धरियावद तहसीलें तथा गिवा विकास खण्ड इन दो जिलों से उत्तरी सीमा पर जड़कर एक विशाल तथा एकीकृत आदिवासी क्षेत्र का सृजन करते हैं । इनके अलावा इस पूरे बागवर प्रदेश के पूर्वान्चल में स्थित चित्तौड़ जिले की प्रतापगढ़ तहसील को तथा अस्तांचल में बसे आबूरोड विकास खण्ड को भी राजस्थान जनजाति क्षेत्र के अभिन्न अंग के रूप में वैधानिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है।

राज्य की 19 तहसीलों की 23 पंचायत समितियों के 4409 गाँवों में फैले इस जनजातीय क्षेत्र में 1981 की जनसंख्या के अनुसार कुल 27.57 लाख जनसंख्या निवास करती है, जिनमें से 18.30 लाख आदिवासी हैं जो इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या का 66.38 प्रतिशत है । राजस्थान राज्य की कुल 41.83 लाख आदिवासी जनसंख्या का कोई 45.28 प्रतिशत भाग हमारे तीन दक्षिणी जिलों में निवास करता है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि राज्य की कुल जनसंख्या में 1971 तथा 1981 के बीच आदिवासी जनसंख्या का प्रतिशत 12.13 से बढ़कर मात्र 12.21 हुआ है, जबकि जनजाति क्षेत्र में शुद्ध प्रतिशत वृद्धि 0.80 के बराबर हुई है। राजस्थान की आदिवासी जातियों में मीणा तथा भील जनसंख्या की दृष्टि से दो प्रमुख जातियाँ हैं। 1971 में राज्य की कुल आदिवासी जनसंख्या का 49 प्रतिशत मीणा तथा 44.9 प्रतिशत भील थे। भीलों का मुख्य निवास राज्य का दक्षिणांचल है, जबकि मीणा जाति मुख्यतया जयपुर, अलवर तथा सवाई माधोपुर जिलों में निवास करती है । यद्यपि उदयपुर जिले में कुल 16.04, चित्तौड़ जिले में 7.6 तथा डूँगरपुर जिले में 4.4 प्रतिशत मीणा जाति के लोग रहते हैं ।

## शिक्षा का स्तर एवं शिक्षा सुविधाएं

राज्य के 24.38 प्रतिशत तथा देश के 36.17 प्रतिशत सामान्य शिक्षा स्तर के मुकाबले राजस्थान के जनजातीय क्षेत्र में शिक्षा का प्रतिशत केवल 16.9 आंका गया है। भारत की

सातवीं पंचवर्षीय योजना में योजना आयोग द्वारा प्रस्तुत आकड़ों के अनुसार 1981 में देश की गैर आदिवासीय जनसंख्या के 41.22 प्रतिशत शिक्षा स्तर के मुकाबले आदिवासी जनसंख्या का शिक्षा स्तर 16.36 प्रतिशत मात्र था। इस प्रकार हमारा पूरा जनजातीय क्षेत्र शिक्षा की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी जनसंख्या के संदर्भ के उभरे स्वरूप के समकक्ष है। राजस्थान की आदिवासी जनसंख्या में साक्षरता के 10.27 प्रतिशत के स्तर के मुकाबले हमारे आदिवासी क्षेत्र में यह प्रतिशत मात्र 7.80* था, जो गैर आदिवासीय जनसंख्या के साक्षरता प्रतिशत का कोई एक चौथाई के करीब बैठता है ।

पिछले तीन दशकों में हमारे संवैधानिक दायित्वों के पालन के परिपेक्ष में राज्य के इस आदिवासी आंचल में शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार तथा शिक्षा स्तर के उत्थान के लिए भागीरथ प्रयास किये गये हैं । 1956-57 तक स्थापित कुल 900 शिषण संस्थाओं के मुकाबले इस समय जनजाति क्षेत्र में 3560 शिक्षण संस्थाएं कार्यरत हैं, जिनमें से 2665 प्राथमिक स्कूल, 650 माध्यमिक स्कूल, 198 उच्च माध्यमिक तथा 54 हायर सैकण्डरी स्कूल हैं । इन शिक्षण संस्थाओं में 1984-85 में 26 लाख बालक प्राथमिक स्तर पर, 51 हजार माध्यमिक स्तर पर तथा 28 हजार विद्यार्थी उच्च तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। 1973-74 के पश्चात् जनजातीय क्षेत्र उपयोजना (ट्राईबल सब प्लान क्षेत्र) की धारणा के जन्म के साथ शिक्षा विकास के प्रयासों में आयी तेजी के परिणामस्वरूप अब तक प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्कूलों की स्थापना में क्रमशः 60, 176 तथा 240 प्रतिशत की प्रगति हुई है तथा आश्रम स्कूलों की नवीन परिपाटी के तहत करीब 35 इकाईयाँ स्थापित की जा चुकी हैं। राज्य शैक्षाणिक अनुसंधान संस्थान द्वारा संकलित सूचना के अनुसार 1979-80 में डूँगरपुर तथा बाँसवाड़ा जिलों के 6 से 11 वर्ष की आयु के आदिवासी बालकों का क्रमशः 78.25 तथा 76.42 भाग स्कूलों में नामांकित था जबकि बालिकाओं के नामांकन के ये प्रतिशत क्रमशः 17.02 तथा 13.56 थे जो राज्य स्तरीय जनजातीय बालकों के नामांकन तस्वीर से बेहतर थे।

उपर्युक्त समंक भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति से संबधित हैं न कि वित्तीय साधनों के खर्च के प्रतीक। इस परिपेक्ष में अभावों से गिरे, अकालों से त्रस्त तथा वित्तीय साधनों की कमी की समस्या से जूझते राजस्थान प्रदेश द्वारा जनजातिय क्षेत्र विकास की पृष्ठभूमि में शिक्षा उत्थान के प्रयासों का मूल्यांकन करना जरूरी है तथा इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है।

## शिक्षा उत्थान की कुछ अनुन्तरित चुनौतियाँ

विगत दशकों में शिक्षा के विस्तार तथा उत्थान के लिये किये गये प्रयासों के बावजूद भी इस क्षेत्र का औसत शिक्षा स्तर राज्य स्तर का दो तिहाई तथा राष्ट्रीय स्तर के आधे से भी कम होना एक चिन्तनीय विषय है । शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर छात्रों की नामांकन संख्या का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकित बालकों की संख्या प्राथमिक स्तर की संख्या का 20 प्रतिशत है जबकि उच्च माध्यमिक स्तर पर कोई 11 प्रतिशत विद्यार्थी ही पहुँच पाते हैं। राज्य शैक्षणिक अनुसंधान संस्थान, उदयपुर द्वारा 1975-76 से 1979-80 के मध्य में अनुसूचित जनजाति के बालकों द्वारा शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्कूल त्याग का जो अध्ययन किया गया था उसके निष्कर्ष चिन्ताजनक हैं। जहां राज्य स्तर पर 67.95 प्रतिशत आदिवासी बालक अपनी पांचवी कक्षा की पढ़ाई पूरी करने के पूर्व ही पढ़ाई छोड़ देने (ड्राप आउट्स) को प्रेरित होते हैं वहाँ डूँगरपुर तथा बाँसवाड़ा जिलों के लिये ये प्रतिशत 77.49 तथा 79.59 प्रतिशत पाये गये। लड़कियों के संदर्भ में तो यह स्कूल त्याग के प्रतिशत क्रमशः 90.67 तथा 94.05 पाये गये जो राज्य स्तर पर 85.85 प्रतिशत की तस्वीर से कुछ ज्यादा ही चिन्ताकारक नजर आते हैं।

इन्हीं स्कूल त्याग के ऊँचे प्रतिशतों को देखते हुए जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग द्वारा प्राथमिक स्तर पर मुफ्त स्कूली पोशाकें, स्टेशनरी तथा पुस्तकों को बाँटने, उपस्थिति स्कालरशिप तथा मध्यान्ह कालीन भोजन उपलब्ध कराने जैसे कुछ अभिनव प्रयोग शुरू किये गये हैं। यद्यपि इन प्रयासों से बालकों को स्कूल में बनाये रखने के लक्ष्य में आंशिक सुधार भी आ रहा है, किन्तु इनसे शिक्षा उत्थान की पूर्ण तस्वीर ही बदल जाए, यह कहना मुश्किल है। वस्तुतः हमें जनजाति क्षेत्र की भौगोलिकता, सामाजिक संरचना, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश तथा लोगों की मनोवैज्ञानिक विकास प्रवृत्तियों के परिवेश में शिक्षा विस्तार तथा शैक्षणिक स्तर में सुधार की चुनौती का उत्तर खोजना होगा।

## नई शिक्षा नीति एवं अभिनव प्रयोग

ऊपर वर्णित परिस्थिति जन्म अवरोधों के संदर्भ में विचार करने पर जनजाति क्षेत्र में शिक्षा के विस्तार तथा उत्थान की समस्या के तीन आयाम उभर कर सामने आते हैं ।

1. जनजाति क्षेत्र में शिक्षा सुविधाओं का गुणात्मक स्वरूप,
2. शिक्षक की भूमिका में गत्यात्मकता का आरोपण, तथा
3. छात्रों एवं छात्राओं की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक धरातल पर समाधान खोजना।

1. (अ) अभी तक के विकास प्रयास मूलतः स्कूल तथा अध्यापक जैसी भौतिक सुविधाएं उपलब्ध कराने की ओर स्वाभाविक तौर पर केन्द्रित रहे हैं । शताब्दियों तक समाज की मुख्यधारा से विलग अरावली उपत्यकाओं में फैले-बिखरे आदिवासी समाज के बालकों को अपने परिचित वातावरण से एक दम परे के ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रेरित करने की दृष्टि से 'एक स्कूल एक अध्यापक' की शिक्षा व्यूह रचना क्रियान्वित होती रही हैं। स्कूल में तो बालक नहीं आते किन्तु क्षेत्रीय प्रचार निदेशालय की कोई गाड़ी किसी गाँव में पहुँच कर यदि किसी प्रकार की छोटी-मोटी फिल्म का प्रदर्शन करती है तो बच्चों एवं बड़ों का एक अच्छा खासा मजमा जमा हो जाता है। टेलीविजन तथा वी.सी.आर.के इस युग में हमें ग्रामीण लोगों की इस मनोरंजन परक शिक्षा लालसा की प्रवृति के अनुरूप जनजाति क्षेत्र की शिक्षा सुविधाओं को ढ़ालना होगा ।

(ब) दस-दस गाँवों की सीमाबद्धता (कन्टीज्यूइटी) के मानदण्ड पर एक केन्द्र स्थापित कर टेलीविजन तथा वी.सी.आर.उपलब्ध कराने का कार्य बहुत अधिक चुनौती भरा नहीं। बालकों की प्राथमिक शिक्षा चुने हुए शिक्षाप्रद एवं मनोरंजन कार्यक्रमों के प्रदर्शन के साथ प्रारंभ हो सकती है ।

(स) बालकों की नियमित उपस्थिति के साथ मध्यान्ह कालीन भोजन को जोड़ने से हमारे शिक्षा विस्तार कार्यक्रमों को अत्यधिक बल मिलेगा ।

(द) औपचारिक शिक्षा की शुरूआत भाषा तथा गणित जैसे नितान्त आवश्यक विषयों के साथ एक वर्ष के बाद की जानी चाहिए। एक साथ सभी विषयों को पढ़ा देने की हमारी उत्सुकता का परिणाम अभी तक बिल्कुल विपरीत रहा है। छात्र स्कूल में ठहरने के बजाय पुस्तकों की संख्या से भयभीत होकर भागने के इरादे में रहता है ।

(ध) टेलीविजन तथा वी.सी.आर.के द्वारा ही गाँवों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम अधिक गतिशीलता एव व्यवहारिकता के आधार पर चलाये जा सकते हैं तथा लोगों को उनके अधिकारों, अनेक सरकारी नियमों, सरकार प्रदत्त विशेष सुविधाओं तथा कृषि कार्यक्रमों जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रशिक्षित करके देश के जागरूक एवं आत्मविश्वासी नागरिक के रूप में तैयार किया जा सकता है ।

(न) इन साधनों को चलाने के लिये विद्युत की समस्या का समाधान अब किसी भी दृष्टि से कठिन नहीं रहा है एवं न ही किसी विशिष्ट दक्षता वाले व्यक्ति की जरूरत अखर सकती है।

अगर इस प्रकार के मनोरंजनयुक्त वातावरण में प्राथमिक शिक्षा का अभिनव प्रयोग प्रारंभ किया जाता है तो यह क्षेत्र "स्कूल त्याग" की दुरूह समस्या से बहुत हद तक मुक्ति पा सकेगा। स्कूलों में वाचनालय एवं पुस्तकालयों की महती आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता किन्तु इन्हें शिक्षा में गुणात्मक सुधार की दूसरी शर्त के रूप में ही स्वीकार करने में किसी को कोई एतराज नहीं होगा।

2. जनजाति क्षेत्र में परिवहन की सुविधाओं की कमी, मनोरंजन के साधनों का अभाव, अपने बच्चों के लिए उचित शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध न होना, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएं प्राप्त न होना अदि कुछ ऐसी समस्याएं हैं, जिनको लेकर बाहर का कोई अच्छा एवं योग्य अध्यापक गाँवों में जाकर रहना नहीं चाहता। स्थानीय जिलों में उपलब्ध अध्यापक अपने गाँव के आस-पास के स्कूलों में रहना महज इसलिये पसंद करते हैं कि सुबह शाम वे अपनी खेती-बाड़ी की देखभाल कर सकें अथवा किसी अंशकालीन व्यवसाय को चलाकर अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करें तथा बीच के समय में स्कूल जाकर शिक्षक के उत्साहहीन दायित्व का औपचारिक निर्वाह कर सकें ।

(अ) कोई कानूनी बंधन हमारी जनतंत्रीय समाज व्यवस्था में शिक्षक के इस बहुआयामी व्यक्तित्व को बदल सकें यह सोचना गलत होगा। हमें विकल्प खोजने होंगे जो शिक्षक को सही अर्थों में अपने पारिवारिक दायित्वों से बहुत हद तक विमुक्त कर सकें तथा उसे एक कर्मठ एवं समाज के प्रति जिम्मेदाराना भूमिका अदा करने के लिए प्रेरित कर सकें ।

(ब) ग्रामीण क्षेत्र में काम करने के उत्सुक शिक्षकों के बालकों को उनकी मनचाही राज्य में कहीं पर भी स्थित शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन की निःशुल्क सुविधाएं उपलब्ध करवा

कर उनसे प्रतिबद्धतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जा सकती है ।

(स) शैक्षाणिक दृष्टि से कमजोर आदिवासी बालकों के लिये अंशकालीन कक्षाएं लगाने की व्यवस्था ग्रामीण स्तर पर की जानी चाहिए तथा इसका भुगतान गाँवों में कार्यरत उन शिक्षकों को राज्य सरकार द्वारा नियमित रूप से किया जाना चाहिए। भुगतान की प्रति माह अधिकतम सीमा बच्चों की संख्या एवं बच्चों के स्तर में सुधार के निष्पक्ष बाहरी संस्था के मूल्यांकन के आधार पर सौ रुपये तथा तीन सौ रुपये के मध्य निर्धारित की जा सकती है।

इस समय महाविद्यालय स्तर पर यू.जी.सी. द्वारा दी जा रही वित्तीय सहायता से छात्रों को अंशकालीन विशेष अध्ययन सुविधाएं दी जा रही हैं । जनजाति विकास विभाग द्वारा प्रतियोगी परीक्षाओं से पूर्व मार्गदर्शन हेतु भी महाविद्यालयी स्तर पर वित्तीय सहायता दी जाती है। इन कार्यक्रमों के औचित्य में कोई शंका नहीं किन्तु प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पढ़ने वाले छात्रों की नींव को मजबूत करने के प्रयास में नीचे के स्तर पर कार्यरत शिक्षक को जब तक शामिल नहीं किया जाता तबतक हम आने वाले कई वर्षों तक किसी क्रान्तिकारी उपलब्धियों के प्रति आशान्वित नहीं हो सकते।

(स) सही अर्थों में ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले तथा शैक्षणिक सुधार के मानदण्डों पर खरे उतरने वाले कर्तव्यनिष्ठ शिक्षकों को प्रतिवर्ष ग्रीषमकाल में निःशुल्क भारत-दर्शन की विशेष सुविधा भारत सरकार द्वारा उपलब्ध करवायी जा सकती है ताकि ये शिक्षक अपने शैक्षणिक भ्रमण के अनुभव ठेठ गांव के बालक तक पहुँचा सकें ।

3. प्राथमिक स्तर पर बालकों को स्कूलों की ओर आकर्षित करना, स्कूलों में नामांकित बालकों को स्कूल परित्याग की मनोवृत्ति से बचाना तथा क्रमशः ऊंचे से ऊंचे शैक्षणिक स्तरों पर विद्यार्थियों की भर्ती संख्या को बढ़ावा एवं बनाये रखना समस्या का तीसरा आयाम है।

(अ) आश्रम स्कूल, छात्रावास तथा स्कॉलरशिप जैसे कार्यक्रमों के साथ मनोरंजन के आधुनिक साधनों को जोड़ने का कार्य अविलम्ब हाथ में लिया जाना चाहिए। सभी आश्रम स्कूलों तथा माध्यमिक एवं उच्च स्तर के छात्रावासों में सुविधानुसार टेलीविजन अथवा वी.सी.आर. सैट उपलब्ध करवा कर विद्यार्थियों को शिक्षावर्द्धक मनोरंजन के माहोल में अपने घर एवं परिवार के प्रति विद्यमान आकर्षक से विमुक्त करने का भागीरथ प्रयास जरूरी है।

(ब) उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिये ग्रीष्मकालीन शिविरों में सभी इच्छुक विद्यार्थियों को भेजकर उनकी शैक्षणिक कठिनाईयों को हल करने का प्रयास जनजाति विकास विभाग स्तर पर ढूंढना होगा । इन शिविरार्थियों को भारत भ्रमण का लाभ देने की राष्ट्रीय योजना बनाकर ऐसे कायक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है ।

(स) बड़े औद्योगिक घरानों पर ग्रीष्मकाल में कतिपय जनजाति विद्यार्थियों को उनकी रुचि के अनुसार ऐप्रेन्टिस के रूप में स्वीकार करने की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार द्वारा डाली जानी चाहिए। इसका सीधा प्रभाव यह होगा कि ये विद्यार्थी अपने फुर्सत के समय में कुछ काम सीख जायेंगे, कुछ कमा लेंगे तथा अपनी औपचारिक शिक्षा पूरी करने के पश्चात् अधिक आत्मविश्वास के साथ 'स्वयं रोजगार' का लाभ उठा सकेंगे ।

जनजाति क्षेत्र में शिक्षा विस्तार तथा सुधार से संबंधित इन विभिन्न अभिनव प्रयोगों के लिये आज हमारे देश तथा राज्यों में अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल वातावरण है। हमारी सरकार नवीन शिक्षा नीति को एक ऐसे आयाम में ढालने को उत्सुक है जो अधिक व्यवहारिक हो, भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप हो तथा बालक को पर-मुखपेक्षी बनाने के बजाय उसे स्वावलम्बी तथा भारतीय आदर्शों के अनुरूप बना सकें । 'जहां चाह वहां राह' की बात इन अभिनव प्रयोगों के बारे में अक्षरक्षः सत्य बैठती है। वित्तीय साधनों के अतिरिक्त बोझ को बिना उठाये प्रौढ़ शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा बालवाड़ी/आंगनवाड़ी कार्यक्रमों तथा राष्ट्रीय समाज सेवा जैसे प्रचलित कार्यक्रमों में सरंचनात्मक तबदीली लाकर तथा इनकी प्रबन्ध व्यवस्था को आधुनिक प्रबन्धकीय परिवेश में ढालकर इन को प्राप्त किया जा सकता है।

द्वारा
**एम. एल. वर्मा,**
**आदिम जाति शोध संस्थान,**
**अशोक नगर, उदयपुर**
**(राजस्थान)**

# ग्राम अधिग्रहण योजना

हेम राज शर्मा

भारत जैसे विकासशील देश की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण है। देश के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि ग्रामीण जनता का विकास हो। ग्रामीण क्षेत्र के लिए जितनी भी योजनाएं एवं कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये उनसे सम्पन्न लोग ही लाभान्वित हुए, ऐसी स्थिति में यह महसूस किया गया कि यदि मध्य स्तर पर ऐसी कोई संस्था कार्य कर रही है जो कमजोर वर्ग के विकास के लिए जिम्मेदार अभिकरणों के बीच सम्पर्क कायम रखे तो कमजोर वर्ग को विकास कार्यक्रम के लाभ उपलब्ध करवाये जा सकते हैं। इस विचार के आधार पर ही ग्राम अधिग्रहण योजना सन् 1969 में भारतीय स्टेट बैंक एवं एक खाद उत्पादक कम्पनी द्वारा ग्राम अर्थव्यवस्था का बहुमुखी विकास के लिए प्रारम्भ की गई।

**अवधारणा:-** किसी वित्तीय, विकासोन्मुखी, अथवा किसी अन्य स्वयंसेवी संस्था द्वारा कोई आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ ग्रामीण क्षेत्र अधिग्रहित कर लिया जाता है तथा उस क्षेत्र के बहुमुखी विकास का उत्तरदायित्व अधिग्रहण करने वाली संस्था अपने ऊपर लेती है जिससे वह संस्था उस क्षेत्र विशेष के सभी विकास के कार्यों में समन्वय ला सके। इसके अतिरिक्त उस ग्राम में राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चेतना के स्तर में भी वृद्धि कर सकें।

**योजना का क्रियान्वयन:-** ग्रामीण अधिग्रहण योजना के क्रियान्वयन में निम्न चरण सम्मिलित होते हैं:-

1. **गांव का चुनाव:-** (i) ऐसे क्षेत्र का चुनाव, जो पिछड़ा हुआ हो, किन्तु वहां विकास की पर्याप्त सम्भावना हो, किया जाता है। (ii) निरन्तर होने वाले प्राकृतिक प्रकोपों से मुक्त हो। (iii) ग्रामीण जन नव प्रवर्तन एवम प्रगतिशील विचारों के प्रति सुग्राही हो। (vi) वित्त संस्थान के ग्राम निकट एवं पहुंच की परिधि में होना चाहिए।
2. **गांव का सर्वेक्षण:-** गावं का एक विस्तृत सर्वेक्षण किया जाता है जिससे क्षेत्र के संसाधनों एवं विकास सम्भाव्यता एवम क्षेत्र के लोगों की आवश्यकता तथा कुशलता एवं अन्य प्रश्नों की जानकारी मिल सके।
3. **कार्ययोजनाओं का निर्माण:-** विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर गांव के बहुमुखी विकास के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम तैयार किया जाता है। क्षेत्र की उपयुक्तता के आधार पर एक व्यवहार एवं बैंक ग्राह्य योजना बनाई जाती है।

ग्राम अधिग्रहण योजना के अन्तर्गत आवश्यक सरकारी विकास विभाग, स्वैच्छिक, सामाजिक सेवा संगठनों, सांस्कृतिक मंचों इत्यादि से स्थापित किया जाता है। साजसज्जा, लिंक रोड, शिक्षा, स्वास्थ्य विद्युत आपूर्ति एवं पेयजल आपूर्ति के विकास पर भी पर्याप्त बल दिया जाता है।

**ऋण लेने वालों की पहचान**

ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न वर्गों जैसे लघु एवं सीमान्त कृषक, खेतिहर मजदूर, दस्तकारों को उनकी कुशलता के आधार पर आवश्यकताओं का निर्धारण करके ऋण दिया जाता है तथा कमजोर आय वर्ग के लोगों को प्राथमिकता दी जाती है।

**कार्यक्रम का क्रियान्वयन**

निर्धारित कार्यक्रम विभिन्न चरणों में इस प्रकार क्रियान्वित किया जाता है जिससे साख वितरण सहित कार्यक्रम 5 वर्षों में पूरा हो जाये।

**ग्रामीण अधिग्रहण योजना की प्रगति**

सन् 1969 में यह योजना भारतीय स्टेट बैंक द्वारा प्रारम्भ की गई। अन्य तत्पश्चात वाणिज्यिक बैंकों एवं केयर, रेडक्राम, रोटरी क्लब, लाइन्स क्लब इत्यादि स्वयं सेवी संगठनों द्वारा भी इस योजना को अपनाया गया। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा यह कार्य मुख्य रूप से अनियोजित साख वितरण, जो उन्हें ऋणों की

वापसी एवं पर्यवेक्षण की दृष्टि से महंगा पड़ता था, को समाप्त करके एक नियोजित तरीके से कृषि एवं ग्रामीण विकासीय कार्यक्रमों को वित्त की आपूर्ति के लिए अपनाया। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा चुनेहुए क्षेत्रों में समूहों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। ग्राम अधिग्रहण योजना वाणिज्यिक बैंकों द्वारा काफी उत्साह से प्रारम्भ की गई।

इस योजना के अन्तर्गत सन् 1972 में जहां 2,684 गांव ही आते थे जून 1986 में यह संख्या 1,21,008 पहुंच गई। जून 1978 में लाभान्वित कृषक जहां 21.0 लाख थे वहां वह संख्या अब जून 1986 में दुगनी होकर 42.4 हो गई। जून 1978 में कुल प्रदत्त ऋण की मात्रा केवल 449 करोड़ रुपये थी जून 1986 में बढ़कर 1228 करोड़ रुपये हो गयी। यह प्रगति काफी संतोषजनक कही जा सकती है यदि भविष्य में इसी उत्साह से यह कार्य जारी रहा तो निश्चित रूप से ग्रामीण विकास को अपेक्षित लाभ मिलेगा।

**समस्या:-** ग्राम अधिग्रहण योजना निश्चित रूप से एक ऐसी योजना है जिसका उद्देश्य गांवों का बहुमुखी विकास एक निश्चित समय में करना है किन्तु इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में निम्न समस्याएं वाणिज्यिक बैंकों के समक्ष रही।

1. बैंकों द्वारा गांव के चुनावों में बरती जाने वाली जल्दी के कारण भी कई बार वास्तविक रूप से पिछड़े गांव की बजाय कुछ विकसित गांव का चुनाव हो जाता है जिससे योजना का सही लाभ नहीं मिल पाता है।
2. विभिन्न बैंकों में समन्वय के अभाव के कारण किसी गांव में एक से अधिक बैंकों द्वारा वित्त की आपूर्ति कर दी जाती है जबकि कुछ गांवों में वित्त की आपूर्ति बिल्कुल नहीं हो पाती है।
3. बैंकों द्वारा पिछड़ा एवं विकास की पर्याप्त सम्भावना वाले गांव के चुनाव में रुचि रहती है किन्तु अक्सर ऐसा गांव बैंक कार्यालय से पर्याप्त दूर होने के कारण योजना प्रभावी ढंग से क्रियान्वित नहीं हो पाती है।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे किसानों की संख्या अधिक होती है जो पहले से ही किसी बैंक के कर्जदार होते हैं। अतः उन्हें इस कार्यक्रम द्वारा ऋण नहीं मिल पाता है।
5. लघु एवं खण्डित जोत होने के कारण कृषक जमींदार एवं महाजनों के चंगुल में फंसे होते हैं उन्हें ऋण देने में बैंकों को काफी कठिनाई होती है।
6. ग्रामीण लोगों की परम्परावादी एवं दृढ़तापूर्ण दृष्टिकोण होने के कारण विभिन्न प्रगतिशील योजनाओं को ढंग से नहीं समझ पाते हैं। अतः बैंकों को अपना कार्यक्रम सुचारु रूप से करने में काफी कठिनाई उत्पन्न होती है।

**सुझाव.**

1. विभिन्न संस्थाएं, जो एक क्षेत्र में ही कार्य कर रही हों, के मध्य समन्वय एवं पारस्परिक सहयोग होना चाहिए।
2. गांव का चुनाव गांव की स्थिति के आधार पर करना चाहिये जिसमें यातायात एवं प्रशासनिक व्यय न्यूनतम हो सके और विकास परियोजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन हो सके।
3. लीड बैंक अथवा किसी अन्य समन्वयकारी सत्ता को यह ध्यान रखना चाहिये कि दूसरे बैंक या वित्तीय संस्थायें उस गांव को अधिग्रहित न करे जो पहले से ही किसी बैंक द्वारा अधिग्रहित हो जिससे दोहरे ऋणों को रोका जा सके और उचित साख का वितरण हो सके।
4. ग्रामीण विकास के लिए अधिग्रहित गांवों में समयबद्ध कार्यक्रम लागू किये जाने चाहिये तथा बैंकों द्वारा कठोरता से इसका पालन करना चाहिये। बैंकों को किसी प्रकार की ढील बरतने की छूट नहीं दी जानी चाहिये।
5. बैंक कर्मचारियों का चयन ग्राम अधिग्रहण योजना के लिए विशेष सावधानी से किया जाना चाहिये। कर्मचारी ऐसे होने चाहिये जो ग्रामीण लोगों के परम्परागत रवैये को बदल सकें एवं कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सफल हो सकें। उन्हें इसके लिए विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिये।
6. ग्रामों में साजसज्जा के विकास के लिए बैंकों को विभिन्न सरकारी विभागों जैसे कृषि, सार्वजनिक निर्माण विभाग, शिक्षा, जन स्वास्थ्य विभाग में पर्याप्त समन्वय होना चाहिये जिससे साजसज्जा का विकास उत्तम तरीके से हो सके।
7. परिसम्पतिओं पर संयुक्त स्वामित्व भी बैंकों द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिये, जिससे अधिक विनियोग की परिसम्पति एक से अधिक कृषक मिलकर क्रय कर सकें।
8. निम्न आय वर्ग की आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार सहायता की राशि एवं शर्तें निर्धारित की जानी चाहिये जिससे उन्हें अधिक लाभ मिल सके।

**द्वारा, श्री नन्द लाल कुम्बज**
**एफ-56, कालीदास मार्ग**
**बनीपार्क, जयपुर-302006**

# उत्तर प्रदेश में आदिवासियों की समस्याएं एवं समाधान

भूपेन्द्र नाथ मिश्र

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर, गोंडा, बहराइच, लखीमपुर, बिजनौर तथा देहरादून आदि जनपदों में आदिवासियों की बस्तियां पायी जाती हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार उत्तर प्रदेश में इनकी संख्या लगभग 32000 होगी, जिनमें अकेले गोंडा जनपद में इनकी संख्या लगभग 12500 होगी। इनकी प्रमुख रूप से भोटिया, राजी, जोन्सारी तथा बोक्सा जातियां पायी जाती हैं। इनकी भोटिया जाति पिथोरागढ़, उत्तरकाशी राजी चमेली, उत्तरकाशी, जोन्सारी देहरादून थारु गोरखपुर गोंडा, बहराइच, खीरी व पूर्वी नैनीताल तथा बोक्सा जाति प. नैनीताल, बिजनौर, देहरादून तथा शिवालिक पर्वत के तराइ क्षेत्रों में पायी जाती है। इनके अतिरिक्त कोल, भील इलाहाबाद, मिर्जापुर आदि में निवास करते हैं परन्तु इन्हें अभी तक जनजातियों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है।

इनके मकान लम्बे चौड़े होते हैं जो ऊपर से देखने में एक ही प्रतीत होते हैं, परन्तु अन्दर से कई कमरें होते हैं जो अधिकाशंत: लकड़ी के बने होते हैं। ये पुरातनवादी तथा रूढ़िवादी विचारों के पोषक होतें हैं। इनमें संयुक्त परिवार की प्रधानता होती है। इनकी औरतों की प्रमुख वेषभूषा लंहगा, कमीज व ओढ़नी तथा पुरुषों का पहनावा धोती, कुर्ता व कमीज होती है। ये शुद्ध हिन्दी नहीं बोल पाते हैं बल्कि उसी का अपभ्रंश बोलते हैं जैसे "गोण्डा जानो थो" अर्थात् मुझे गोण्डा जाना है। इनमें शादी-ब्याह भी आपसी नजदीकी सम्बन्धों में होता है, जैसे ये दादा, बुआ की लड़की से शादी कर लेते हैं।

उत्तर प्रदेश के आदिवासियों के समक्ष कई समस्याएं उनके विकास में बाधक सिद्ध हो रही हैं। इनकी कृषि जोत बहुत छोटी-छोटी होती है। एक परिवार के पास एक एकड़ से भी कम भूमि उपलब्ध होती है। सिचाई साधनों का अभाव विशेष इनकी कृषि में बाधक सिद्ध हो रहा है। इन क्षेत्रों में जल स्तर बहुत निम्न होता है। कहीं-कहीं तो पेय जल की भी समस्या होती है। अधिकांश क्षेत्रों की भूमियां कंकरीली-पथरीली होती हैं। शराब खोरी इनकी सबसे बड़ी बुराई है। निरक्षरता एवं संचार साधनों के अभाव में कृषि की आधुनिक तकनीकी से वंचित रह जाते हैं, फलस्वरूप इन्हें कृषि का लाभकारी स्वरूप नहीं मिल पाता है। गरीबी अपेक्षाकृत इनमें अधिक पायी जाती है। इन क्षेत्रों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों का भी दर्शन दुलर्भ है।

उत्तर प्रदेश सरकार जनजतियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए कृत संकल्प है। उत्तर प्रदेश के हरिजन एवं समाज कल्याण विभाग द्वारा जनजातियों के बाहुल्य जिलों में इनके विकास की विभिन्न योजनाएं संचालित की जा रही हैं। जिनमें गोण्डा जनपद प्रमुख है। इन योजनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. थारु विकास परियोजना के तहत जनजातियों को विविध प्रकार की सुविधायें मुहय्या कराई जा रही हैं। इनमें से कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए निःशुल्क रूप से रासायनिक उर्वरक, उन्नतशील बीज व कृषि रक्षा रसायन तथा उपकरण उपलब्ध करायें जा रहे हैं। कृषि के अतिरिक्त रिक्शा, दुकान, डनलप तथा पशुपालन आदि के लिए भी 3000 रुपये तक ऋण 50 प्रतिशत अनुदान पर दिया जाता है।
2. आई० आर० डी० पी० के अंतर्गत भी विकास क्षेत्रों के माध्यम से 1000 रुपये तक की छूट दी जाती है।
3. पुनर्वास योजना के तहत प्रत्येक परिवार को 5000 रुपये तक का अनुदान दिया जाता है।
4. जनजातियों को बैल क्रय, कैश क्राप, मुर्गीपालन, सुअर पालन तथा बकरी पालन आदि के लिए भी 1000 रुपये तक की अनुदान सुविधा दी जा रही है।

इन क्षेत्रों में निरक्षरता को ध्यान में रखते हुए हरिजन समाज कल्याण विभाग द्वारा जनजाति छात्रों को शिक्षा में

शेष पृष्ठ 14 पर

# आख़िरी सड़क

विनोद पाराशर

सुबक... सुबक। चंदा, अरी ओ चंदा। अरे ये क्या ? आज फिर रो रही है और वो भी रेल की पटरी पर बैठकर। चल, खड़ी हो। रेल के आने का समय हो गया, ऐसे ही अगर पटरी पर बैठी रही तो किसी दिन रेल के नीचे आकर मर जाएगी।

नहीं... नहीं... मुझे मत छेड़ो भैया। मैं तो कब की मर चुकी हूं। अब मेरा रखा ही क्या है इस गांव में। मुझे इस गाड़ी का ही इंतज़ार है। मैं कहीं दूर चली जाऊंगी और अब उसी दिन आऊंगी जिस दिन मेरा बेटा पढ़-लिखकर पुलिस इंस्पेक्टर बन जायेगा और फिर इसी गांव में आकर इन्हीं गांव वालों के सामने इन दरिंदों को मेरे कदमों में झुका देगा। मुझे तो बस उसी दिन का इंतज़ार है। भगवान के यहां देर है अंधेर नहीं। मैं अपनी इस बेइज्जती का बदला ज़रूर लूंगी।

नहीं... नहीं। तुमने मुझे भाई बनाया है। क्या मेरा यह भी हक नहीं कि मैं अपनी बहन के लिए कुछ कर सकूं। देख... देख ज़रा इस नन्हें से बच्चे को। इसे लिए-लिए कहां-कहां घूमोगी। क्या मैं इसे दो वक्त की रोटी भी नहीं खिला सकता। अब... ये... नहीं हो सकता भैया। मैंने इसी की सौगन्ध खाकर वचन लिया है। मैं एक न एक दिन ज़रूर आऊंगी और उस वक्त ये ही मेरा सहारा होगा जिसके बल पर मैं उन दरिंदों से बदला ले सकने में कामयाब हो सकूंगी।

सुबक... सुबक..., एक बार फिर पुरानी यादों की तस्वीरें नज़रों के सामने आने लगती हैं। दारा ने उस दिन चंदा के पति सूरज को कैसे गांव वालों के सामने मारा था और जान लेकर ही दम लिया था। पुलिस उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकी थी। इस पर भी दारा को शांति नहीं मिली और उसने चंदा का घर भी जला दिया।..... एकाएक चंदा की तंद्रा टूटी। तुम मुझे उसी घर में रहने को कहते हो। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि उस वक्त मेरी क्या हालत थी, पति की मौत ऊपर से घर को जला दिया। मैं इन दरिंदों की दरिंदगी और नहीं चलने दूंगी। ऐसा मैं और किसी के साथ नहीं होने दूंगी। बहुत हो चुकी इनकी दादागिरी।

गांव का यह दारा, जो पूरे गांव में बदनाम था। लोग उसकी गुंडागर्दी से डरते थे, उसको देखते ही अपने घरों के दरवाजे-खिड़कियां बन्द कर लेते थे। चंदा बड़ी भाग्यशाली थी जो घर जलने से पहले ही पीछे के रास्ते से भाग गई थी। चंदा... देख रेल आ गई। खड़ी हो और देख संभल कर जाना। गांव से करीब तीन किलोमीटर दूर जिला बरसोवा के गांव का प्लेटफार्म था जो बरसोवा के नाम से ही मशहूर था, बहुत ही छोटा-सा कस्बा था बरसोवा। यहां के लोग बड़ी मेहनत और लगन से काम करते थे, परन्तु यहां के बड़े-बड़े लोग भी अमीर दारा की तरह से ही गरीबों का खून चूस-चूस कर अपनी तिजोरियां भरते और अत्याचार करते थे।

चलो बहन ! अब तो रेल आ गई। इससे पहले कि दारा को पता चले कि तू जा रही है, फौरन रेलगाड़ी में बैठ जा। चल... जल्दी कर रेल चलने वाली है। ला, ये गठरी मुझे दे दे, इसे मैं रखता हूं। चंदा, तू ये तो बता दे, तू जायेगी कहां? भैया... जहां भगवान ले जाये। दुनिया बहुत बड़ी है, कहीं भी उतर जाऊंगी। अपना ख्याल रखना भैया, मैं जरूर आऊंगी। मैं डरकर नहीं भाग रही, मैं बदले की आग में झुलस रही हूं.... और गांव छोड़ते हुए चंदा को एक बार फिर रोना आ गया।

चंदा खूबसूरत थी और अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी। पिता पंचायत में फैसला सुनाते थे। दारा ने उसके मां-बाप दोनों को मार दिया था ताकि वह चंदा से ब्याह कर सके। चंदा काफी समझदार थी, उसने दारा के चुंगल से निकलकर एक शरीफ लड़के (सूरज) से शादी कर ली थी, मगर दारा ने उसे चैन से जीने नहीं दिया।

पकड़ लो इसे... भागने न पाये... भाई बना फिरता था

और एक बहन को नहीं संभाल सका। जान से मार दो साले को। रामू, जो अभी-अभी चंदा को दिलासा दे रहा था, गांव वालों के कंधे पर शमशान जा रहा था। दारा के आदमियों ने चंदा की सहायता करने वाले रामू को भी जीवित नहीं छोड़ा।

संतरे... वाला... सं... त... रे... वा... ला, चा... य... ग... रम, चंदा ने रेलगाड़ी से उतर कर इधर-उधर देखा। उस अजनबी शहर को पहली बार देखकार कुछ घबरा गई, मगर फिर हिम्मत करके संतरे वाले के पास जाकर पूछा-भैया, ये कौन-सा स्टेशन है?... कहां जाना है तुमको? अरे भैया... जाना कहां है, बस काम की तलाश कर रही हूं, कहीं कुछ काम धंधा मिल जाये तो अपने छोटे बच्चे को कुछ खिलाऊं-पिलाऊं। भैया तुम मुझे बता सकते हो कि यहां कुछ काम मिल सकता हैं या नहीं। तुम्हारा बड़ा भला होगा।... देखो, वो सामने पुलिया है न, वहां से उतरकर नीचे चली जाना। वहां बहुत सारी कोठियां है, बंगले हैं, अच्छे-अच्छे मकान हैं, जहां बहुत बड़े-बड़े लोग रहते हैं, तुम्हें कोई न कोई काम, मिल ही जायेगा।

अब कहां जाऊं, पूरा दिन हो गया घूमते-घूमते, कहीं भी किसी ने कोई काम नहीं दिया। भूख भी लगी है, दो रोटी और दूध मुन्ने के लिए लाई थी, मगर वो भी खराब हो गया। इन्हें ही खा लेती हूं। कहां बैठूं? हां, मन्दिर साफ़ जगह है, शाम भी हो गई है, यहीं सो जायेंगे। भगवान ज़रूर मदद करेगा। चलो मुन्ना। अरे... रोटी तो इसी थैले में थीं, कहां गई। शायद गिर गईं। हे भगवान, अब तो भूखे ही मरना पड़ेगा। ऊ... ऊ... अरे रोता है। नहीं राजा बेटा, नहीं। ...बहनजी, थोड़ा-सा भोजन मिलेगा, या दूध ही मिल जाये। बच्चा बहुत भूखा है। मैं भी बहुत भूखी हूं।... खाने को तो मेरे पास कुछ नहीं है, हां एक रुपया है, इसका मुन्ने को दूध पिला देना। ऊं... अरे... चल तेरे लायक तो हो ही गया बेटा, मेरा क्या है, मैं तो अभी और भूखी रह सकती हूं।

ए... चायवाले... थोड़ा दूध देना भैया। ये लो एक रुपया, इसी का दे दो जितना भी आये। लो बहन, ये गिलास में दूध है। ...अरे देख ...यार, पेपर में तेरे लिए जगह निकली है, बहुत अच्छी है। ...क्यों मज़ाक कर रहा है। ...अरे नहीं, इसमें लिखा है एक रसोईये की ज़रूरत है और एक नौकरानी की जो घर पर रह कर सबकी देखभाल कर सके तथा बाकी सारा घर का काम भी कर सके।... ये तो तेरे ही काम की नौकरी है, तुझे करनी चाहिए।... अरे भैया, मुझे इसका पता बता दो, मैं वहां जाऊंगी, वहां काम करूंगी। भैया, तुम्हारा बहुत भला होगा, मैं तो काम की तलाश में ही आई हूं। ...अच्छा ...अच्छा... यार ज़रा पैन तो दो, इसको ये पता लिखकर दे देता हूं, बेचारी का काम बन जायेगा, बहुत परेशान नज़र आती है। ...लो बहन, ये पता। तुम उस सिनेमा घर के पीछे से जाना, एक ऊंचा-सा पेड़ मिलेगा। वहां किसी से ये पर्ची दिखाकर पूछ लेना।... अच्छा भैया, भगवान तुम्हारा भला करे, तुम्हें अच्छी-सी नौकरी दिलाये। ...बहनजी, मैं तो अपने दोस्त से यूं ही मज़ाक कर रहा था, ये तो यहां पुलिस में अफ़सर है, सारा इलाका जानता है इनको, गुंडे इनके नाम से कांपते हैं। आज इसकी छुट्टी है, इसलिए यहां गप्पें मार रहा है। बड़ा भला अफसर है, सबको अपना ही समझता है, परन्तु उतना ही कड़क भी है। बेचारा... गरीबों का दाता, गुंडों का दुश्मन। अच्छा... मुझे बेचारा कहता है, ठहर जा, अभी देखता हूं। अरे... अब तो जाना ही पड़ेगा, वर्ना क्या पता लगता है पुलिस वालों का, इनका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा बंद करते हुए। ...देखा ...देखा ...कैसा भागता है, हर समय मज़ाक करता है, देखा बहनजी। ये मेरा जिगरी दोस्त है, हर समय मसखरी करता रहता है। चलो बहनजी, तुम्हें वहां तक छोड़ दूं। हां... हां... चलो भैया, मैं तो यहां नई-नई हूं, पता तो मिल जायेगा पर घूमना बहुत पड़ेगा और मैं बहुत थक गई हूं। ...लो बहन, तुम्हारा ठिकाना आ गया, अब मैं चलता हूं। ये सामने वाला मकान है, शायद तुम्हें काम मिल जाये। अच्छा .. भैया... नमस्ते, भगवान तुम्हारा भला करे।

खट... खट... कौन है..., अभी—आई, दो मिनट ठहरो।.... क्या काम है?... काम के लिए आई हूं... हां... हां... आओ, अन्दर आ जाओ... तुम घर का काम करने आई हो, इतनी सुन्दर हो, लगता तो नहीं कि पहले भी कहीं काम किया हो, तुम्हें क्या सारा काम आता है। और ये बच्चा, कितना अच्छा है... तुम्हारा ही है क्या? कहां से आई हो... तुम्हारा घर कहां है?... बीबीजी..., इस दुनिया में इस बच्चे के सिवा मेरा कोई नहीं है... सुबक... सुबक...। क्यों क्या हुआ...? बीबीजी... गांव में हमारे साथ बहुत अत्याचार हुआ... सारी घटना सुनाने के बाद... बीबीजी, मुझे आज ज़रूर काम पर रख लेना...। ऊं... ऊं... अरे इसे भूख लगी है, ठहरो, मैं तुम्हें दूध देती हूं, ये लो पिला दो इसे। तुम भी

हाथ-मुंह धोकर खाना खा लो, फिर आराम करना। उधर सीढ़ियों के नीचे एक कमरा है, वो तुम्हारा है। ...जी... बीबीजी... आपका ये अहसान मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूंगी। सुबक... सुबक...। रोती क्यों है, अहसान कोई किसी पर नहीं करता, मैं भी तुम्हें काम के बदले दे रही हूं ये सब, इसमें मेरा भी तो स्वार्थ हुआ न।.... अच्छा तुम्हारा नाम क्या है। ...जी... चंदा। अच्छा अब तुम आराम करो, शाम से काम शुरू करना है।

ऊधर दारा के अत्याचार से सारे गांव वाले डरे-डरे रहते हैं, उसका अत्याचार दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही चला जा रहा था।

धीरे-धीरे वक्त बीतता गया, भला वक्त को कौन रोक सकता है। अब दारा से बदला लेने के लिए चंदा का बेटा बड़ा हो गया था, चंदा के बालों पर थोड़ी-थोड़ी सफ़ेदी ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया था। बेटा जवान हो गया, पुलिस में अफसर हो गया। अब चंदा के पास सब कुछ था। अपना एक छोटा-सा मकान और एक नौकर भी। मगर चंदा के दिल में चैन नहीं था, उसके सीने में बदले की आग पहले जैसे ही धधक रही थी।... पी... पी... पी... अरे... क्या मकान के ऊपर ही चढ़ाने का इरादा है, सरकार ने जीप क्या दे दी है, दिनभर सड़कों पर ही घूमता रहता है। मां की तुझे कोई चिंता नहीं रहती, सारा दिन अकेली घर में पड़ी रहती हूं। अब तो एक सुन्दर-सी बहू ला दे, मेरा तो तभी दिल लगेगा, साथ में बात करने वाला कोई तो हो न।... अरे मां, तूने फिर आते ही ये बात छेड़ दी। चल, पहले खाना खिला, बहुत भूख लगी है। क्या भूखा ही मारने का इरादा है।... अरे भूखे मरे तेरे दुश्मन, तुझे भला क्यों भूखा मरना पड़ेगा।... जैसे दारा का बोलबाला था, वैसे ही अब चंदा के बेटे विजय का, फर्क सिर्फ इतना था कि दारा से शरीफ आदमी कांपते थे, विजय से गुंडे-बदमाश। सरकार ने भी विजय के कारनामों से खुश होकर उसे कितने ही मैडलों से सम्मानित किया था और इस तरह विजय इतनी जल्दी डी.एस.पी. बन गया था।

मां, तू मेरे आते ही उदास क्यों हो जाती है, तुझे तो खुश होना चाहिए। ...चल... पहले तू खाना खा ले बेटा। ...लेकिन मां पहले तू ये बता कि क्या कमी है तुझे, तेरे लिए मैं अपनी जान भी दे सकता हूं। आज मैं जो कुछ भी हूं, तेरी तपस्या और लगन का नतीजा है, आज तुझे बताना ही पड़ेगा मां, तुझे मेरी सौगन्ध। ...वि ...ज ...य ...तू हर बात में अपनी सौगन्ध मत दिया कर। अगर मैं तुझे अपनी आप बीती सुनाऊं तो तू सुन नहीं सकेगा। ...नहीं ...मां, मेरा दिल कुछ भी सुनने में समर्थ है, आज तुझे बताना ही पड़ेगा।.... तो सुन बेटा, पर पहले वादा कर कि तू कानून को अपने हाथ में नहीं लेगा। ...मैं वादा करता हूं मां। ...तो सुन.... पूरी कहानी सुनने के बाद विजय का खून खोलने लगा... नहीं... मां मैं उस दरिंदे को जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। तूने मुझसे इस बात को इतने दिन तक क्यों छुपाये रखा। ...इसलिए कि मुझे तुम्हारी उन्नति की चिन्ता थी बेटा, मैं चाहती थी मेरा बेटा कुल का नाम रोशन करे। ...मां मैं जल्दी ही अपना तबादला वहां करा लूंगा, तुम चलने की तैयारी करो। ...दारा ने अपनी मौत को पुकारा है मां, अब उसे मालूम हो जायेगा कि असहाय पर अत्याचार करना कितना बुरा होता है। ...विजय बेटा, तुम जिससे भिड़ने जा रहे हो वह बहुत खतरनाक है, उसकी बड़ी दूर-दूर तक पहुंच है। ...मां तुम अपने बेटे को नहीं जानती, मैं अपनी रखवाली करना जानता हूं, बस अब चलने की तैयारी करो।

अगले दिन विजय आफिस में पहुंचता है... लेकिन सर मैंने अपनी मां को वचन दिया है। सर यकीन जानिए, वहां दिन-प्रति-दिन अत्याचार बढ़ रहा है। अगर हमने शीघ्र ही कोई एक्शन नहीं लिया तो वरसोवा गांव हमेशा-हमेशा के लिए खत्म हो जायेगा। ...विजय बेटे ...मैं तुम जैसे पुलिस अफसर को खोना नहीं चाहता...। अगर तुम वहां जाना ही चाहते हो तो जाओ मगर एक शर्त है कि तुम जो कुछ करोगे, कानून के दायरे में रहकर ही करोगे। ...ठीक है सर। आपको कोई शिकायत नहीं आएगी। ...अच्छा तो इस काम के लिए कल ही निकल पड़ो। ...ओ.के. सर... थैंक्यू वैरीमच। ...आल दि बैस्ट विजय...। अब तुम जा सकते हो। जोरदार सैल्यूट मारकर विजय अपने घर की ओर चल पड़ा। उसकी आंखों में ज्वाला धधक रही थी, वह एक पल भी खोना नहीं चाहता था, पंख लगाकर वरसोवा पहुंच जाना चाहता था।

और जल्दी ही वहां पहुंच कर विजय ने दारा के सभी अत्याचार खत्म कर दिए थे, गांव वालों ने उसका पूरा साथ दिया। उसने दारा को सजा भी दिलवाई। दारा जब जेल से छूट कर आया तो वह एक नेक इन्सान था और उसने अपनी सारी जमीन जायदाद, धन-दौलत गरीब लोगों में बांट दी। यही उसके गुनाहों का प्रायश्चित था।

विजय ने शादी कर ली थी, जिससे एक लड़का और एक लड़की थी। गांव वाले विजय की मां चंदा को मुख्य अतिथि के रूप बुलाया करते थे। विजय के प्रयासों से गांव में प्रगति के काम होने लगे थे। पक्की सड़कें, बिजली, पानी आदि की व्यवस्था, पाठशाला, अस्पताल आदि का निर्माण किया जा रहा था। कहने का मतलब गांव में गुण्डागर्दी अब खत्म हो गई थी। अब गांव में शान्ति का साम्राज्य छाया हुआ था। उन्हीं दिनों गांव की मुख्य सड़क का काम सम्पन्न हो गया था इसलिए उस सड़क का उद्घाटन करने के लिए चंदा को बुलाया गया था।... चंदा बहन की जय हो...; चंदा बहन की जय हो... से सारा गांव गूंज गया था। चंदा ने सड़क का उद्घाटन तो कर दिया मगर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। चंदा अब हमेशा के लिए अपने सूरज के पास चली गई थी। शायद यही सड़क चंदा की आखिरी सड़क थी, जिस पर चलते-चलते चंदा अब थक चुकी थी।

**1239, रंग महल,**
**श्यामा प्रसाद मुखर्जी मार्ग,**
**दिल्ली-110006**

---

**पृष्ठ 10 का शेष**

प्रोत्साहन देने के लिए कक्षा 1 से 10 तक एवं दशमोत्तर छात्रवृत्ति की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत कक्षा 1 से 5 तक 12 रुपये प्रतिमाह कक्षा6 से 8 तक 20 रुपये प्रतिमाह कक्षा 9 व 10 में 30 रुपये प्रतिमाह तथा दशमोत्तर में 54 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। साथ-साथ इन क्षेत्रों में प्राथमिक एवं जूनियर हाई स्कूल खोले जा रहे हैं। परन्तु इन्टर कालेजों एवं महाविद्यालयों की कमी अवश्य ही चिन्तनीय है। इन क्षेत्रों में कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारियों को प्रोत्साहन स्वरूप प्रति घर भत्ता दिया जाता है, क्योंकि ये तराई क्षेत्रों के सुदूर ग्राम्यांचलों में निवास करते हैं।

### राजकीय उन्नयन बस्ती कानपुर

कानपुर में सन् 1922 में अंग्रेजों द्वारा 'हबूड़ा' और "भात" जनजातियों के 140 परिवारों के 750 सदस्यों को एक खास खुली जेल में सशस्त्र सैनिकों की निगरानी में रखा गया था ताकि वे लूटमार, डकैती जैसे अपराध न कर सकें। क्योंकि इन जातियों को अपराधी करार करके जोरायम पेशा घोषित कर दिया गया था और यह बस्ती "क्रिमनल ट्राइब सेटलमेंट" के नाम से मशहूर थी। परन्तु आज़ादी के बाद सरकार ने इन्हें आजाद नागरिक का दर्जा देकर इस बस्ती का नाम राजकीय उन्नयन बस्ती कानपुर रखा गया ताकि वे हीन भावना से ग्रस्त न रहें। सरकार द्वारा इनके लिए मकानों, दुकानों आदि का निर्माण कराया गया तथा कपड़ा सिलने की एक फैक्ट्री भी खोली गयी।

### श्री राम वनवासी छात्रावास गोरखपुर

जनजातियों के कल्याण हेतु सरकारी प्रयासों के अतिरिक्त थोड़ा बहुत प्रयास कुछ समाज सेवी संस्थाओं द्वारा भी किया जा रहा है। जिनमें श्री राम वनवासी छात्रावास विशेष उल्लेखनीय है। उक्त छात्रावास गोरखपुर मंदिर परिसर में स्थित है। इसमें आदिवासी बच्चों को निःशुल्क आवास, वस्त्र, भोजन तथा शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है।

उपरोक्त तथ्यों को मद्देनजर रखते हुए कहा जा सकता है कि जनजातियों के विकास के लिए हो रहे सरकारी प्रयास सन्तोषजनक हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इन योजनाओं को जितनी स्वच्छता एवं ईमानदारी पूर्वक संचालित किया जायेगा, उतनी ही कारगरता से इनका विकास होगा। जनजातियों के अन्दर व्याप्त बुराईयों को सामाजिक चेतना के माध्यम से दूर किया जा सकता है। इसके लिए समाज सेवी संगठनों को और बेहतर भूमिका निभानी होगी। इन क्षेत्रों में यातायात, संचार आदि की सुविधाओं को मुहैया कराके औद्योगीकरण तथा लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों पर बल देना होगा। मात्र कृषि से इनका विकास संभव नहीं क्योंकि इन क्षेत्रों की भूमि कृषि विकास में सबसे बड़ी बाधक है।

**ग्राम व पत्रालय-बनगाई, जनपद,**
**गोण्डा, उ. प्र.-271122**

# राष्ट्रीय पक्षी मोर

श्रीमती शान्ति

मोर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। भारतीय साहित्य में युगों से इसे एक प्रमुख स्थान मिला है। यह एक सर्वगुणसम्पन्न पक्षी है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि विधाता ने इसे सबसे सुन्दर पक्षी बनाने की ठान कर इसकी रचना की होगी, मगर यह एक तरह का पक्षपात ही है कि सारा सौन्दर्य इसी पक्षी को दे दिया गया। कौन सा गुण इसमें निहित नहीं है शालीनता, बुद्धि, गौरव, रूप सभी कुछ तो इस पक्षी में है, तभी तो इसकी पतली ग्रीवा गर्व से ऊंची रहती है।

पुराने समय में ही यह अपनी सुन्दरता के कारण राजाओं, महाराजाओं के राजमुकुट में स्थान पा चुका था। यहां तक कि खुद भगवान श्री कृष्ण ने मोर मुकुट धारण करके इसकी श्रेष्ठता को और भी बढ़ा दिया। राजाओं की राजमुद्राओं से लेकर हिन्दी काव्य जगत में इस पक्षी को जो गौरव मिला है वह किसी अन्य पक्षी को नहीं मिला।

इसके चित्रों तक को लोग शुभ मानते हैं, इसलिए मांगलिक अवसरों पर उनसे अपने घरों को सजाते हैं। इसकी गौरवगाथा का कहां तक बखान करें, मुगलकालीन तख्ते – ताऊस पर भी इसका चित्र अंकित है। इसके पंखों को शुभ मान कर लोग अपने-अपने घरों में सजा कर रखते हैं।

मोर का शरीर छोटा होता है, मगर पूंछ वाले पंखों की वजह से इसकी लम्बाई बहुत अधिक लगती है। इसके पूंछ वाले पंख कभी-कभी एक मीटर तक भी लम्बे होते हैं। इसके सिर वाले भाग में गहरे चमकीले हरे और नीले रंग के छोटे-छोटे पंख होते हैं। गर्दन इसकी लम्बी व पतली होती है। सिर पर पंखों का एक मुकुट-सा होता है। इसके पूंछ वाले पंखों पर आंख जैसी गोल-गोल आकृत्तियां होती हैं जो कि चमकते नीले व सुनहरे रंग की होती हैं।

मोर की अपेक्षा मोरनी साधारण रंग रूप वाली होती हैं। इसका शरीर चित्तीदार भूरे रंग का होता है। इसके शरीर पर नर की तरह लम्बी खूबसूरत पूंछ नहीं होती है। जिस पर वह गर्व कर सके। इसके सर पर बना मुकुट (कलंगी) भी नर से छोटी होती है। प्रायः यह देखा जाता है कि मादा, नर की अपेक्षा ज्यादा खूबसूरत होती है मगर मोर के संदर्भ में यह बात उलटी देखने में मिलती है। नर मोर अपनी मादा से दिखने में बहुत खूबसूरत होता है।

मोर खाने के मामले में ज्यादा नुक्ताचीनी वाला नहीं होता है, यह सब तरह की चीजें खा लेता है मसलन छोटे कीड़े-मकौड़े, मुलायम पत्तियां, फल, बीज वगैरह। मोर सांप, चूहों को भी अपना आहार बना लेता है।

वर्षाकाल में काले-काले मेघों को देखकर मोर भाव-विभोर होकर नाचने लगता है, इस समय इसकी छवि देखने लायक होती है, इसकी लम्बी खूबसूरत पूंछ पीछे से उठ कर गोलाकार हो जाती है। मोरनियां नाचने की इस कला से वंचित रहती हैं इसलिए जब मोर नाचने लगता है तो मोरनियां चारों ओर से उसे घेर लेती हैं और मंत्र-मुग्ध हो कर उसका नाच देखती रहती हैं। मोर इस तरह नाचते हुए मोरनियों को अपना प्रेम संदेश देता है।

मोरनियां घोंसला खुद बनाती हैं मोर इस काम में उसकी जरा भी मदद नहीं करता। झाड़ियों या लम्बी घास में मोरनी बेडौल-सा घोंसला बना कर उसमें एक बार में चार से छः तक अंडे दिया करती है। बच्चों को खाना लाने और खिलाने का सारा काम मोरनी ही करती है। मोर बच्चों को पालने में उसकी जरा भी सहायता नहीं करता।

मोर भारत महाद्वीप के अधिकांश भागों में पाए जाते हैं। यह बड़े गर्व की बात है कि पक्षियों का राजा मोर मुख्यतः हमारे देश की ही देन है। भारतीय मोर अधिकतर राजस्थान, ब्रज तथा चित्रकूट में बहुतायत में मिलते हैं।

बर्मा और जावा में भी मोर हैं। अफ्रिका का सफेद मोर काफी पसन्द किया जाता है। इसके सफेद मलमल की तरह साफ पंख होते हैं। यह बहुत सुन्दर दिखता है।

मानव समाज के लिए यह बहुत लाभदायक है। यह किसानों का मित्र माना जाता है क्योंकि यह सांप और चूहों को मार कर खा जाता है। मगर बड़े ही दुःख की बात है कि इसके सुन्दर परों व स्वादिष्ट मांस के लोभ में शिकारी लोग इसका शिकार करते हैं और इस सुन्दर पक्षी को मार देते हैं।

**47, पटौदी हाउस**
**कैनिंग रोड,**
**नई दिल्ली-110001**

# प्रदूषण अंकेक्षण

डा. एन.पी. अग्रवाल
सतीश मोहन गोयल

आ ये दिन संसार के अनेक देशों के कारखानों से जहरीली गैस रिसने, परमाणु संयंत्रों के आस पास रेडियो धर्मिता के बहने, धुंआ उगलती चिमनियों, उद्योगों से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ से, बायलर व मशीनों से उत्पन्न ध्वनि के अत्याधिक तीव्र होने से पर्यावरण के विषमय होने के समाचार पढ़ने-सुनने को मिलते हैं। मानव जीवन को विषमय होता देख कर ही संत कबीर ने "दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन" पंक्ति की रचना की थी। वर्तमान में मानव का जीवन इतना विषमय हो गया है कि न खाने को शुद्ध अन्न है, न पीने को शुद्ध पानी और न प्राणदायी वायु। यही नहीं मानव के विचार, सोचने-समझने की क्षमता और उसका व्यवहार भी शुद्ध नहीं है। बढ़ती हुई आबादी, भौतिक-विकास और औद्योगीकरण ने जल, वायु व पर्यावरण को दूषित करने में अहम भूमिका निभाई है। अत: प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्रत्यक्ष रूप से आँख को न दिखाई देने वाला यह भयानक प्रदूषित पर्यावरण क्या है?

प्रदूषण से अभिप्राय : प्रदूषण दो शब्दों प्र+दूषण से मिलकर बना है। "प्र" का सामान्य अर्थ पराया अर्थात् प्रकृति से हट कर और दूषण का अर्थ विकृति है। इस प्रकार प्रदूषण का अर्थ सामान्य व्यवहार में कृत्रिम साधनों द्वारा जनित दूषण या विकृति को प्रदूषण कहते हैं। पर्यावरण (निवारण) अधिनियम, 1986 के अनुसार पर्यावरण प्रदूषण से अभिप्राय प्रकृति में ऐसे अवशिष्ट पदार्थों के केन्द्रीत होने से है, जो वातावरण को विषाक्त बनाये, पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है।

वर्तमान में पर्यावरण प्रदूषण एक जटिल समस्या है। तीव्र वैज्ञानिक प्रगति के बाद भी मानवीय क्रियाओं द्वारा उत्पन्न प्रदूषण के दुष्परिणाम की रोकथाम के लिए कोई सुदृढ़ उपाय अभी तक नहीं खोजा जा सका है। पर्यावरण प्रदषण के महत्वपर्ण प्रकार निम्न वर्णित हैं :-

**1. वायु प्रदूषण-** यन्त्रीकरण के बढ़ते उपयोग से वायु प्रदूषण का विस्तार होता जा रहा है। औद्योगीकरण से वायुमण्डल में हानिकारक गैसें बढ़ रही हैं। मोटर वाहनों से निकलने वाले धुऐं, पैट्रोलियम पदार्थों के जलने और औद्योगिक संस्थाओं की ऊंची-ऊंची चिमनियों से निकलने वाले धुऐं से वातावरण दिन-प्रतिदिन अधिक प्रदूषित होता जा रहा है। पैट्रोलियम पदार्थ जलने से बनी गैस के श्वास के साथ शरीर में प्रवेश करने से फुफ्फुसीय कैन्सर हो जाता है। सीमेन्ट उद्योग से उठने वाले धुलिय कण वातावरण में फैलकर वायु मण्डल को दूषित कर देते हैं।

**2. जल प्रदूषण:-** छोटे-बड़े उद्योग, सीमेन्ट, चीनी रसायनिक उद्योग अपने उत्पादन कार्य में उपयोग करने के पश्चात दूषित पानी, कूड़ा-करकट, गन्दगी व अवशिष्ट पदार्थ आदि आस-पास के जल स्रोतों को नदी-नालों, तालाबों, पोखरों आदि में बहा देते हैं। जिससे जल स्रोत दूषित होते जा रहे हैं। यह दूषित जल ही "जल प्रदूषण" कहलाता है।

जल स्रोतों में लगातार रसायनों के विसर्जन से पानी में बैक्टीरिया एवं वाइरस उत्पन्न हो जाता है। अतिसार व बच्चों में होने वाली अंतड़ियों की बीमारियां दूषित जलपान के कारण ही हैं। प्रदूषित जल स्थानीय लोगों में मलेरिया, पीलिया और गम्भीर बीमारियों का वातावरण उत्पन्न कर देता है।

**3. ध्वनि प्रदूषण:-** मोटर वाहनों, रेलगाड़ियों, कल कारखानों, उद्योग धन्धें, हवाई जहाज, ताप विद्युत केन्द्र, बादलों की गरज, रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलिविजन, ध्वनि प्रसारण यंत्र, जुलूस में लगाये गये नारे, शादी-विवाह, आपसी गपशप सभी से शोर उत्पन्न होता जा रहा है। यह सतत् बढ़ता हुआ शोर ही

"ध्वनि-प्रदूषण" है। शोर श्वास गति, रक्त चाप, नाड़ी गति में उतार-चढ़ाव, जठराव, गतिशीलता में कमी, एकाग्रता भंग, रुधिर संचरण में परिवर्तन, पाचन विकार, सिरदर्द आदि उत्पन्न करता है। आज के बढ़ते मानसिक तनाव, झुंझलाहट, कार्य अकुशलता का सबसे बड़ा कारण ही ध्वनि प्रदूषण है।

**4. भूमि प्रदूषण:**-औद्योगिक इकाइयों द्वारा बहाये गये गन्दे पानी और रसायनिक युक्त अवशिष्ट पदार्थों ने, न केवल भू-जल तथा बहते पानी को ही दूषित किया है, वरन् इसके साथ-साथ आसपास की भूमि को भी वनस्पति विहीन कर दिया है। मिट्टी में रसायनिक युक्त पदार्थ मिलने से इसका असर पेड़-पौधों व उपज पर भी पड़ता है।

**5. मस्तिष्क प्रदूषण:**- जल, वायु व भूमि में बढ़ते प्रदूषण के साथ-साथ आज की वैज्ञानिक प्रगति, नये-नये औद्योगिक उत्पादों व विस्तृत विज्ञापन ने मनुष्य के मस्तिष्क को ही दूषित कर दिया है। जिसे "मस्तिष्क प्रदूषण" कहना उचित है। कम्प्यूटर के विस्तार ने मानव को मस्तिष्क विहीन ही कर दिया है, क्योंकि मनुष्य छोटी से छोटी गणना तथा कार्य तक कम्प्यूटर के माध्यम से करता है, जिससे मस्तिष्क का समुचित उपयोग नहीं होने से उसकी सोचने-समझने व कार्य करने की क्षमता का ह्रास होता जा रहा है।

**6. व्यवहार प्रदूषण:**- औद्योगीकरण से पूंजीवाद को बढ़ावा मिला है। एक अनुमान के आधार पर विश्व की 2% जनसंख्या के पास कुल इतने साधन हैं, जितनें शेष 98% जनसंख्या के पास भी नहीं हैं। भाषा, शिष्टता, नैतिकता आदि में अत्याधिक गिरावट आती जा रही है। मनुष्य के आपसी सम्बन्धों में बढ़ रही कटुता ही "व्यवहार प्रदूषण" है।

**प्रदूषण रोकने के उपाय:**-पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए जल (प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण) अधिनियम 1974 तथा वायु (प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण) अधिनियम, 1981 में अनेक व्यवस्थायें की गई हैं। प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए केन्द्रीय पर्यावरण विभाग तथा प्रदूषण (निवारण और नियन्त्रण) मण्डल की भी स्थापना की गई। प्रदूषण (निवारण और नियन्त्रण) मण्डल की स्वीकृति पर ही किसी उद्योग की स्थापना की जा सकती है। मण्डल, अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार प्रदूषण करने वाली संस्थाओं से शुल्क वसूल करता है तथा उन्हें प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए बाध्य करता है। लेकिन इन कानून में इतनी खामियाँ हैं कि प्रदूषण को रोकने के लिए कोई प्रभावी कार्य नहीं हो पाता है, और उद्यमियों को प्रदूषण सुधार हेतु मजबूर नहीं किया जा सकता है। फलस्वरूप इन कानूनों की अनुपालना न हो पाने के कारण पर्यावरण (निवारक) अधिनियम 1986 के अन्तर्गत अनेक प्रभावशाली व्यवस्थायें की गई हैं क्योंकि वर्तमान समय में वैज्ञानिक प्रगति व औद्योगीकरण तेजी से हो रहे प्रदूषण को रोकने के लिए समुचित कदम उठाये जाने आवश्यक हैं। जो निम्न हैं:-

1. परम्परागत ईंधनों को न जला कर आधुनिक ईंधनों जैसे-प्राकृतिक गैस, विद्युत भट्टियों आदि के प्रयोग को महत्व दिया जाना चाहिये।

2. मोटर गाड़ियों से निकलने वाले प्रदूषकों को उत्प्रेरक परिवर्तक से कम किया जा सकता है।

3. ऊंची चिमनियाँ लगाकर पृथ्वी के धरातल पर प्रदूषकों को अधिक क्षेत्र में फैलाया जाना चाहिए।

4. औद्योगिक संयंत्रों को आबादी से दूर स्थापित करके वायु प्रदूषण के प्रभाव को नियन्त्रित करना चाहिये।

5. वृक्षारोपण तथा वन लगाकर वायु प्रदूषण को नियन्त्रित किया जा सकता है।

6. वाटर फिल्टर तथा सिवरेज ट्रीटमेन्ट प्लांट लगाकर प्रदूषण को प्रभावहीन किया जा सकता है।

7. प्रदूषित जल को जल स्रोतों में विसर्जित नहीं करने के लिये उद्यमियों पर प्रतिबन्ध लगाये जाने चाहिये।

8. ध्वनि उत्पन्न करने वाली मशीनों को अलग-अलग स्थापित करना चाहिये तथा ध्वनि प्रतिरोध लगाकर शोर की तीव्रता कम की जा सकती है।

9. श्रमिकों की आडियोमीटर से श्रवण-शक्ति जांच करने की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

10. ध्वनि-प्रसारक यंत्रों का अन्धाधुंध उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाना आवश्यक है।

11. साइलेंसर युक्त मशीनों का उपयोग किया जाना चाहिये।

2. मजदूरों को अनिवार्य रूप से इयरप्लग्स, इयर मफ्स, लमेट का उपयोग करना चाहिये।

3. मनुष्य में बढ़ रही विकृति, अशिष्टता, अव्यावहारिकता, नैतिकता को कम करने के लिये उनके विचार, ज्ञान, सोचने मझने की शक्ति को विस्तत करने के लिये धार्मिक व त्मशुद्धि कार्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

4. पूंजीपतियों और निर्धन वर्ग में मानवीय व्यवहारों की थापना के लिए प्रभावशाली कदम उठाये जाने चाहिये।

5. प्रदूषण करने वाली संस्थाओं से पर्यावरण को दूषित करने ो लागत वसूल की जानी चाहिये तथा इन लागतों का ंकेक्षक से मूल्यांकन करवाया जाना चाहिये।

6. विज्ञापन माध्यमों के द्वारा किये गये अश्लील प्रदर्शन पर तिबन्ध लगाया जाये। जिससे नैतिक पतन (प्रदूषण) को का जा सके।

**दूषण लागत**

औद्योगिक संस्थाओं द्वारा प्रकृति की वास्तविकता में की ई मिलावट का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज र पड़ता है। वास्तव में औद्योगिक ईकाइयों द्वारा फैलाया या यह प्रदूषण विष समान है. जो प्राणदायक तत्व, जल, य, प्रकाश, भूमि और ध्वनि को दषित कर रहा है। प्रदूषण ो लागत को वास्तविक रूप से समाज वहन करता है। रूपर्ट लर के अनुसार आज ऐसा कोई उद्योग नहीं है, जिसके र्मियों को श्रवण दोष नहीं हो। विज्ञापन के अश्लील माध्यम समाज में कुप्रभाव को जन्म दिया है। अतः आवश्यकता स बात की है कि उद्यमी अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को ी समझें और प्रदूषण निवारण हेतु पर्याप्त व्यवस्थायें करें। स हेतु उद्यमी को प्रदूषण के प्रभाव का अंकेक्षण करवाना ाहिये।

**दूषण अंकेक्षण से अभिप्राय**

अंकेक्षण एक अनुसंधान या जांच कार्य है जो किसी बात ी वस्तु स्थिति का गहन अध्ययन करता है और उसकी ास्तविकता को प्रकट करता है। अंकेक्षण प्रक्रिया के अधीन सामाजिक अंकेक्षण" एक नवीन विचारधारा है। जिसके न्तर्गत यह जांच की जाती है कि एक संस्था के कारण समाज ो किन-किन लागतों को वहन करना पड़ता है तथा संस्था से समाज को क्या-क्या लाभ प्राप्त हो रहे हैं। सामाजिक अंकेक्षण के अन्तर्गत प्रदूषण से समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है जिसे "प्रदूषण अंकेक्षण" कहा जाता है। प्रदूषण अंकेक्षण में अंकेक्षक यह जांच करता है कि पर्यावरण में हो रहे प्रदूषण का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से समाज पर क्या प्रभाव पड़ रहा है तथा पर्यावरण को स्वच्छ बनाने हेतु संस्था द्वारा उचित कदम उठाये गये हैं या नहीं? अंकेक्षक इस बात की भी जांच करता है कि संस्थान ने प्रदूषण की लागत का उचित लेखा किया है या नहीं? इसके साथ-साथ अंकेक्षक यह भी देखता है कि संस्थान ने प्रदूषण लागत-लाभ का मूल्यांकन करके प्रदूषण के शुद्ध प्रभाव को सामाजिक लेखाकर्म प्रतिवेदन में दर्शाया है अथवा नहीं? अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिये कि संस्थान ने वायु (प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण), जल (प्रदूषण निवारण और नियन्त्रण)तथा पर्यावरण (निवारण) अधिनियमों की व्यवस्थाओं की अनुपालना किया है या नहीं? अंकेक्षक को यह भी जांच करनी चाहिए कि संस्थान ने वायुमण्डल में हानिकारक गैसों को विसर्जित किया है या नहीं तथा धुऐं को निकालने के लिए पर्याप्त ऊंची चिमनियों का उपयोग किया है या नहीं? अंकेक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत अंकेक्षक को यह भी जांच करनी चाहिये कि संस्थान ने कारखाने के चारों ओर आवश्यकतानुसार पेड़-पोधों का रोपण किया है या नहीं? अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिये कि संस्थान ने उत्पादन कार्य में उपयोग लेने के पश्चात दूषित पानी को जल स्रोत में विसर्जित करने से पूर्व फिल्टर किया हो तथा इस दौरान इसके प्रवाह के लिये ढंकी हुई नालियों का उपयोग किया हो ताकि आस पास के क्षेत्र में यह प्रदूषित पानी दुर्गंध न फैलावे। इसके साथ-साथ अंकेक्षक को यह भी जांच करनी चाहिये कि ऐसे पानी, कूड़ा-करकट, गन्दगी आदि अवशिष्ट पदार्थ जो पूर्ण रूप से हानिकारक हैं तथा जिन्हें उपयोगी नहीं बनाया जा सकता है, ऐसे पदार्थों को संस्थान ने जमीन में गाड़ने की उचित व्यवस्था की हो। अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिये कि संस्थान ने मशीनों के संचालन व कर्मचारियों द्वारा किये जाने वाले कार्य के दौरान हुई ध्वनि को न्यूनतम करने के लिए प्रभावशाली व्यवस्थायें की हैं अथवा नहीं? उसे यह देखना होगा कि संस्थान ने ध्वनि प्रतिरोधक, ध्वनि-अवशोषक तथा मशीनों में साइलेन्सर का उपयोग किया है अथवा नहीं? अंकेक्षक को यह भी देखना होगा कि संस्थान में कार्यरत् श्रमिकों को इयरप्लगस, इयरमफ्स, हेलमेट आदि की सुविधायें प्रदान की गई हैं। अंकेक्षक को प्रदूषण के सम्बन्ध में देखना

चाहिये कि संस्था के शौचालय, मूत्रालय, स्नानघर आदि सुविधाओं को श्रमिकों के कार्यरत् स्थान से पर्याप्त दूरी पर स्थापित किया हो ताकि इनका प्रभाव श्रमिकों के स्वास्थ्य पर नहीं पड़े। अंकेक्षक को प्रदूषण के सम्बन्ध में प्रबन्धकीय कार्यों की भी समीक्षा करनी चाहिये। उसे यह देखना चाहिये कि प्रबन्धकों ने प्रदूषण को रोकने के लिये क्या योजना बनाई है तथा यह योजना प्रदूषण निवारण के लिए प्रभावशाली है अथवा नहीं? और इस योजना को क्रियान्वित किया गया अथवा नहीं? अंकेक्षक को प्रबन्धको तथा कर्मचारियों के मध्य सम्बन्धों की भी जांच करनी चाहिये कि संस्थान में मानवीय सम्बन्ध विचारधारा को महत्व दिया गया हो तथा कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जा रहा हो तथा उन्हें प्रताड़ित व उनका शोषण नहीं किया जा रहा हो, क्योंकि कर्मचारियों और प्रबन्धकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध न होने पर श्रमिकों में मानसिक तनाव, झुंझुलाहट, कार्य की अकुशलता तथा नीरसता बढ़ती है।

अंकेक्षक को यह भी देखना चाहिए कि संस्थान में व्यवसायिक क्षेत्र में स्वच्छ प्रतिस्पर्धा स्थापित हो तथा अश्लील विज्ञापन साधनों का उपयोग नहीं किया हो क्योंकि संस्थान की इस क्रिया से सामाजिक प्रदूषण में वृद्धि होती है।

इस प्रकार प्रदूषण रोकने व उसे नियन्त्रित करने तथा पर्यावरण को स्वच्छ बनाये रखने का पूर्ण उत्तरदायित्व संस्थान का है। अतः संस्थान अपनी जिम्मेदारी को समझे और उसके निवारण हेतु पर्याप्त व्यवस्था करे तथा अपने सामाजिक लेखाकर्म में प्रदूषण के प्रभावों व लागत-लाभ मूल्यों को उल्लेखित करें।

**प्रदूषण अंकेक्षण का महत्व**

प्रत्येक उद्यमी का आर्थिक उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है। उद्यमी द्वारा अर्जित लाभ में समाज का त्याग या लागत भी सम्मिलित होती है। उत्पादन प्रक्रिया के दौरान पर्यावरण में उत्पन्न हुए दोषों का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज पर ही पड़ता है। समाज इस औद्योगिक लाभ की लागत स्वयं की कीमत पर वहन करता है। अतः समाज द्वारा वहन की गई इस लागत का मूल्यांकन किया जाना अति महत्वपूर्ण है। टाटा आयरन एवं स्टील कम्पनी लिमिटेड ने सामाजिक अंकेक्षण के अन्तर्गत् प्रदूषण को पर्याप्त महत्व दिया है।

प्रदूषण का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अंकेक्षण करवाया जाना समाज, कम्पनी, सरकार आदि सभी के लिये अत्याधिक महत्व रखता है। प्रदूषण अंकेक्षण करवाने से संस्थान अपने उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक सजग रहती है और पर्यावरण को स्वच्छ बनाने के लिए उचित प्रयत्न करती है। प्रदूषण का अंकेक्षण करवाये जाने से सरकार को यह मालूम हो जाता है कि पर्यावरण को हानिकारक बनाने में किस उद्योग का कितना हाथ है, जिससे सरकार उन उद्योगों पर उचित कार्यवाही कर सकती है तथा उनसे प्रदूषण लागत वसूल करके स्वयं इसके सुधार हेतु प्रयत्न कर सकती है। स्वच्छ वातावरण के होने पर संस्थान को समाज के आक्रोश का सामना नहीं करना पड़ता है और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।

**शौरूम नं० बी-2, लक्ष्मी मंदिर सिनेमा के पास, टोंक रोड, जयपुर**

# ग्राम्य विकास

**डॉ. राकेश अग्रवाल**

गाँवों ने करवट बदली तो
देश सुखी बन जायेगा।
पेट भरेगा हर मानव का
हर मानव मुस्कायेगा।
काम-काज की कमी न होगी
कोई नहीं खाली होगा।
खेतों से खलिहानों तक
खुशियों का आलम होगा।
ऋण से मुक्ति होगी सबकी
सबका अपना घर होगा।
दो बच्चों के प्यार का पौधा
जीवन का सम्बल होगा।
शिक्षा होगी, दीक्षा होगी
अन्ध विश्वास नहीं होंगे।
सड़कें होंगी, नहरें होंगी
और सभी साधन होंगे।
खेतों से उद्योग बढ़ेंगे
आय बढ़ेगी जन-जन की
श्रम का पूरा प्रतिफल होगा
साध सजेगी हर मन की।

# गोंड – मध्य भारत की खेतिहर जनजाति

एस. अलमेलू

मध्य प्रदेश का वन-प्रांतर मूलतः आदिवासी गोंड की जीवन लीला का केन्द्र है। मानवशास्त्र में ये लोग अपनी "गोतुल-प्रथा" के कारण प्रसिद्ध हैं। गोंड मुख्यतः मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मैसूर, पं. बंगाल तथा गुजरात राज्यों में पाये जाते हैं। मध्य प्रदेश में इनका निवास दो विभागों में देखा गया है। प्रथम तो ये पहाड़ी और घने जंगलों से घिरे मध्य भाग में रहते हैं और दूसरा सतपुड़ा की उत्तरी तथा दक्षिणी पहाड़ियों में निवास करते हैं। मध्य प्रदेश के बिल्कुल दक्षिण में स्थित "बस्तर" गोंड आदिवासियों का मूल निवास स्थान है।

भारत की जनजातियों में गोंड आदिवासियों का प्रमुख स्थान है। इनकी जनसंख्या लगभग 40 लाख तक होगी जो आज भी असभ्यता के अंधकार में रह रहे हैं। आदि काल से गोंड की अन्य पड़ौसी जनजातियां, "बैंगा", "खोंड", "अहीर", "भूमिया", "कल्हार", "गड़ाबास", "कोर्कू" आदि रही हैं।

गोंड शरीर से गठे, मध्यम कद और गहरे भूरे रंग के होते हैं। इनका मुख अंडाकार,नाक चौड़ी, आंखे काली, होठ मोटे तथा मुंह चौड़ा होता है। इनके बाल काले तथा लहरदार होते हैं। इनकी भौतिक-संरचना के आधार पर इन्हें पूर्व-द्राविड़, आदिवासी कहा जा सकता है।

**भाषा**: गोंडों की अपनी एक भाषा है जिसे "गोंडी" कहते हैं। ये लोग द्रविड़ भाषाओं से भी परिचित हैं। कन्नड़ तथा तमिल भाषाओं का इनको अच्छा ज्ञान है। इसके अतिरिक्त सम्पर्क में आने वाली अन्य भाषाओं को भी ये लोग सीख रहे हैं। गोंडी भाषा के कुछ शब्द इस प्रकार हैं :-

| हिन्दी | गोंडी |
|---|---|
| नमस्कार | सेवार |
| बैल | कोन्दा |
| कहाँ जा रहा है? | बेंगे हन्ती? |

**जंगली इलाका--फिर भी अभ्यस्त जीवन**

मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले में कई छोटे-छोटे गांव

गोंड आदिवासी महिला

पास-पास बसे हैं। यहीं पर घने जंगल भी पाये जाते हैं। इन जंगलों में साम्बर, हिरन, चीता, शेर, जंगली सुअर, खरगोश आदि जंगली जानवर पाये जाते हैं। यह जंगल साल, शीशम, चीड़, सेम्हल, पलास आदि पेड़ों से भरा पड़ा है। इतनी कठिनाइयों में भी गोंड प्रसन्न हैं। घर बनाने में ये लोग पेड़ के तनों, बांस आदि का प्रयोग करते हैं ।

**वस्त्र एवं आभूषण**

आज से कुछ वर्ष पहले गोंड बहुत कम वस्त्रों का प्रयोग करते थे। पुरुष अधिकतर लंगोटी बांधते थे, किन्तु वर्तमान काल में शहरी सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण गोंड स्त्रियां मराठी औरतों जैसे नौ गज की साड़ी व ब्लाउज पहनने लगी हैं। पुरुष धोती या पायजामा कुर्ता पहनते हैं। छोटे लड़के कच्छा व बनियान पहनते हैं तथा छोटी लड़कियां लहगा-ब्लाउज पहनती हैं। गोंड स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते हैं। स्त्रियों के आभूषणों के नाम इस प्रकार हैं-गले के लिए चन्द्रहार, खागोरा तथा काली पोत की माला, पाटली तथा गुलोटे मणिबन्ध के लिये, बाकड़ा बाहोरा, ऊपरी बांह के लिए, पेरी, तोड़े, पैजन पैर के आभूषण तथा कमर में करदोड़ा पहनती हैं। गोंड पुरुष अधिकतर ताबीज पहनते हैं। कुछ गोंड पुरुष कानों में चांदी या सोने के बाले भी पहनते हैं।

## अपनी परम्परा .... अपने रिवाज

**1. सामाजिक जीवन**

**जन्म :** गोंड परिवार का मुखिया पिता होता है। बच्चे का नामकरण संस्कार बच्चे के पैदा होने के छठे हफ्ते होता है। इस दिन एक दिया जला कर तथा एक प्याली में चावल की शराब लेकर बच्चे के पास रखा जाता है तथा पूर्वजों के नाम बोले जाते हैं। इससे यह धारणा रहती है कि पूर्वज बच्चे का आशीर्वाद दे रहे हैं। छिंदवाड़ा जिले के ग्राम के आदिवासियों से ज्ञात हुआ कि यदि पुत्री हो तो नामकरण संस्कार के दिन ही उसके शरीर में "गुदवाया" जाता है। जुड़वे बच्चे का जन्म गोंड समाज में बुरा माना जाता है ।

**गोत्र :** गोत्र गोंड जाति का एक महत्वपूर्ण तत्व है। गोत्र में कई रक्त संबंधी तथा अन्य सम्बन्धी होते हैं जो कि एक ही पूर्वज पर विश्वास रखते हैं। बच्चा जन्म से ही गोत्र का सदस्य होता है। इनके गोत्र "एक देव" से "सात देव" तक होते हैं।

**विवाह :** गोंड जाति में अपहरण विवाह का प्रचलन है। इन लोगों में फागुन मास में उत्सवों एवं मेलों का आयोजन किया जाता है जिसे "जरी" का मेला या "गाल" का मेला कहते हैं। इसी मेले में लड़की-लड़का भाग जाते हैं और फिर परम्परानुसार सबके सामने विवाह होता है।

गोंडों में पुरुष बच्चे न होने की स्थिति में दूसरा विवाह कर सकता है। पुरुष का अपनी साली से विवाह तथा स्त्री को देवर से विवाह गोंड समाज में स्वीकृत है। विवाह बिरादरी और उसी जाति में होता है तथा गोत्र व गांव दूसरे होते हैं। गोंड समाज में तलाक व विधवा विवाह भी स्वीकृत हैं।

**गोद लेने की प्रथा:** यदि घर में लड़की न हो तो सम्बन्धियों से लड़की गोद ली जा सकती है। यदि पुत्र न हो तो लड़की के विवाह के बाद दामाद को घर जमाई बना लेते हैं।

**2. सांस्कृतिक जीवन**

गोंड हिन्दू देवी-देवताओं जैसे काली माता, शिव, सूर्य देवता आदि की पूजा करते हैं। इनके मुख्य त्यौहार-भीवासन पूजा (भीवासन गोंड विश्वास के अनुसार माता माई का भाई है अखाड़ी (गुरु पूर्णिमा), नाग पंचमी, भुजोलिया (रक्षा बन्धन दशहरा, दीवाली आदि हैं। "पोला" छिंदवाड़ा के गोंडों का एक प्रमुख एवं उत्साहपूर्ण त्यौहार है। इस त्यौहार में बैलों से काम लेना निषिद्ध होता है तथा बैलों की दौड़ जिसमें बैलों को खूब सजाया जाता है, इस त्यौहार को दुगुना सुन्दर बना देती हैं। ये लोग देशी शराब बनाते व पीते हैं। प्रत्येक सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में शराब पी और पिलाई जाती है। गोंड मन्दिर अधिकतर महुओ या साजो वृक्षों के नीचे बनाये जाते हैं।

**3. आर्थिक जीवन-प्रकृति की देन**

गोंड आदिवासियों का आर्थिक जीवन बहुत ही कठिन है। कुछ वर्ष पहले ये लोग शिकार करते थे और भोजन संचय की स्थिति में थे परन्तु अब बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने के कारण ये खेती-बाड़ी करने लगे हैं।

इनकी खेती-बाड़ी करने का तरीका बड़ा ही भिन्न है। जब पेड़ों पर महुओं के फूल निकल आते हैं (अक्टूबर-नवम्बर महीना) तब परिवार का सबसे बड़ा सदस्य खेती के लिए भूमि चुनता है, उसकी सफाई करवाता है और पेड़ों को काट गिराते हैं। यह कार्य चैत्र (मार्च-अप्रैल) के महीने में, विश्वासानुसार जब कौआ अपना घोंसला बनाने लगता है, तब इन जंगलों को

नृत्य के लिए ढोलक तैयार करते हुए एक गोंड परिवार

आग लगा कर किया जाता है। पानी की कमी के कारण बना राख,खाद की भाँति प्रयोग किया जाता है तथा बीज बो दिये जाते हैं। इसके बाद वर्षा के जल से स्वयं ही सिंचाई हो जाती है। इस प्रकार की अस्थाई खेती "झूम" कहलाती है।

खेती के अतिरिक्त शिकार और मछली पकड़ना, भोजन प्राप्त करने के अन्य साधन हैं। शिकार करने में ये लोग धनुष-बाण, लोहे का त्रिकोण, गुलेल, चाकू, कुल्हाड़ी तथा जाल का प्रयोग करते हैं। गोंड अधिकतर खरगोश, जंगली सुअर, सेही, कबूतर आदि मार कर खाते है। कभी-कभी ये लोग सांप को मार कर उसका सिर काट कर अलग कर देते हैं और उसे भूनकर खाते हैं। मछली पकड़ने में पुरुष ही नहीं गोंड स्त्रियाँ भी बड़ी कुशल होती हैं। बरसात के दिनों में देखा जाता है कि दो गोंड स्त्रियाँ पानी में एक साड़ी डाल देती है और दो दो किनारे पकड़ कर खड़ी हो जाती हैं। शेष औरतें मछलियों को पानी में खदेड़ती हैं। इस विधि से जैसे ही मछली साड़ी में आकर गिरती हैं ये दो स्त्रियाँ साड़ी उठा लेती हैं। पालतु जानवरों में ये लोग कुत्ते, भैंस, गाय और बकरी पालते हैं, मुर्गिया खाने के विचार से पाली जाती हैं।

गोंड अभी भी घर्षण की विधि से आग जलाते हैं। इस विधि में झल्ली या बैल के खोल (शैल) में रूई रख लेते हैं और दो चकमक पत्थरों से रगड़ द्वारा आग जलाते हैं। आर्थिक जीवन को ध्यान में रखते हुए ये लोग अपने रहने के लिए अधिकतर ऐसे स्थान को चुनते हैं जो भौगोलिक दृष्टि से तथा पानी की उपलब्धि से अनुकूल हो। देखा गया है कि फसल की कटाई के बाद खाली समय झोंपड़ियां बनाने का होता है। झौपड़ियों की मरम्मत अधिकतर बैसाख (अप्रैल-मई) में की जाती है।

उक्त विषय से विदित होता है कि आदिवासियों की संस्कृति की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जो उनकी अमूल्य निधि होती हैं, परन्तु देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि विकास की योजनायें संतुलित हों। सभी योजनायें सभी क्षेत्रों में लागू होनी चाहिये। आदिवासियों की संस्कृति से उनकी प्रगति होनी चाहिये। छिंदवाड़ा जिले में भी सरकारी योजनायें आदिवासी विकास की ओर केन्द्रित हो। साथ ही खर्चों का उपयोग एवं मूल्यांकन भी सही होना चाहिये। इस क्षेत्र के आदिवासियों के विकास के लिए सर्वप्रथम हमें इनकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक स्थिति को सुधारना आवश्यक है।

**शैक्षणिक क्षेत्र में सुधार**

गोंड आदिवासियों की प्रगति के लिए शिक्षा के क्षेत्र में निम्न प्रकार की सुविधायें होनी चाहियें:-

■ यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र को प्रभावशाली बनाने के लिए

शासकीय एवं अशासकीय दोनों प्रकार से प्रयत्न हो रहे हैं परन्तु अभी भी आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार होना अनिवार्य है। बच्चों को निःशुल्क पढ़ने की और अधिक सुविधा प्रदान की जानी चाहिये।

- आदिवासियों को उनके गुण देखकर प्रशिक्षण देना चाहिए, प्रौढ़ शिक्षा भी इसका माध्यम हो सकती है।
- गोंड गांवों में चर्चायें, मीटिंग तथा नाटक आदि के माध्यम से जागृति लानी चाहिए।
- व्यक्तित्व विकास के लिए आदिवासी बच्चों को विभिन्न प्रकार के खेल-कूद की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये।
- आदिवासियों को अधिक संख्या में शिक्षित करने के लिए अनिवार्य बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। अधिक छात्रावास छात्रों के रहने हेतु खोले जायें।

**आर्थिक सुधार**

छिंदवाड़ा जिले के गोंड की भूमि कम उपजाऊ पहाड़ी व बिना सिंचाई की है। भूमि से उपज बहुत कम होती है। खरीफ की मुख्य फसलें चावल, मूंग, तूर, उर्द, बरबरी व तिल हैं तथा रबी की फसलें गेहूं व चना हैं। कभी-कभी गोंड जंगलों से कंदमूल एकत्र करते हैं तथा समय आने पर उसे खाते हैं। "कोडन-कुटकी" नामक मिश्रित फसल भी प्रयोग में है। भूमि की ऐसी स्थिति में भूमि सुधार अति आवश्यक है। सिंचाई हेतु तालाब, कुऐं आदि की व्यवस्था होनी चाहिये इसके लिये शासन की ओर से हर तरह की सुविधायें उपलब्ध करानी चाहिये।

गोंडों को कृषि के क्षेत्र में तकनीकी शिक्षा देना अति आवश्यक है। उत्तम बीज, खाद आदि आदिवासियों के लिये उपलब्ध हो, इसका भी ध्यान होना चाहिये।

कृषि से सम्बन्धित लघु उद्योगों में गोंडों को प्रशिक्षण मिलना चाहिये जैसे-मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, डेरी आदि।

मिश्रित फसलों की जानकारी व भंडार गृह में अनाज की सुरक्षा का ज्ञान भी आदिवासियों को भलीभांति देना आवश्यक है।

**लघु उद्योग सुधार**

मध्य प्रदेश का छिंदवाड़ा जिला वन सौंदर्य के कारण बहुत ही आकर्षक एवं शोभनीय है। इन वनों में छिपी औषधियों का प्रयोजन बहुत अधिक है। यदि इन जड़ी बूटियों को एकत्र करने व उनके उपयोग का प्रशिक्षण आदिवासियों को दिया जाये तो यह लघु उद्योग निस्संदेह ही गोंडों की जीविका का उत्तम साधन सिद्ध हो सकता है। हर्ड, बहेड़, आंवला, गोंद, शहद, महुआ आदि कुछ लघु वनोपज हैं।

**गोंड महिलायें-विकास से कितनी जुड़ पाईं**

सर्वेक्षण यह बताते हैं कि गोंड महिलाये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे हैं। परन्तु शिक्षा, सरल तकनीकी प्रशिक्षण के अभाव में जंगलों के बीच कई कठिनाईयों का सामना कर रही हैं। इन आदिवासी महिलाओं के लिए सरकारी योजना के अन्तर्गत कुछ शिविर जरूर आयोजित किये जा चुके हैं परन्तु क्षेत्र में जागरूकता नहीं के बराबर है। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे इन आदिवासियों के विकास की ओर गंभीरता से विचार करें। इन महिलाओं को छोटे-छोटे लघु उद्योगों के लिए प्रोत्साहित किया जाये व प्रशिक्षण दिया जाये तो वे आत्म निर्भर होना सीखेंगी। यह कार्य ग्रामों में "महिला मंडल" के गठन से संभव हो सकता है।

महिलाओं में जागृति लाने के लिये, महिला संस्थाओं को आगे बढ़ना चाहिये व इन गोंड महिलाओं को बाहर के वातावरण को देखने का अवसर मिलना चाहिये।

यदि कुछ आदिवासी महिलाओं को स्वास्थ्य का प्रशिक्षण दिलाया जाये तो वे गांवों में स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य देख सकती हैं।

उक्त सभी प्रकार के विकास के लिये, आदिवासी क्षेत्रों में यातायात के साधनों में सुधार लाना अति आवश्यक है। आदिवासियों की प्रगति के लिये उनका सम्बन्ध मंडियों, कस्बों तथा मुख्य सड़कों से सम्पर्क स्थापित करना अति आवश्यक है। छिंदवाड़ा के कुछ स्थानों पर नदी व नालों पर पुल बन जायें तो यहां वे गांवों से गोंड बारह मास शहर आ जा सकते हैं। आदिवासियों का विकास, वास्तव में राष्ट्र का विकास है, जिसकी जिम्मेदारी हम सभी पर है।

**एफ-51, ग्रीन पार्क (मैन)**
**नई दिल्ली–110016.**

# आदिवासी समाज : कल और आज

जगदीश सिंह बलहारा

'विविधता में एकता' का प्रतीक भारत अपने वृहद आंचल में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, अलग-अलग भाषाओं, पृथक-पृथक रीति रिवाजों से सम्पन्न समाज को सदियों से पालता-पोसता आया है। देश के अधिकतर हिस्सों में जहां सभ्य एवं उन्नत समाज मौजूद है वहीं कई स्थानों पर आज की गरीबी, कुप्रथाओं, रूढ़ियों एवं विपदाओं के हजारों वर्षों से सहते आदिवासी समाज आज भी देखने में आते हैं।

साधारणतया उन स्थानीय आदिमवासिन्दों को आदिवासी जन-जातियों की संज्ञा दी जाती है जो भाषा, स्वभाव तथा सामाजिक और प्रशासनिक दृष्टि से विशिष्ट और अन्यों से पृथक होते हैं। 1981 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की संख्या 5,16,28,638 के लगभग थी। आज कल 4 करोड़ के लगभग मानी जाती है। आजादी से पूर्व इनकी हालत बदतर थी। उनकी आय के मुख्य साधन हजारों वर्षों से जंगल, पहाड़, नदियां तथा अन्य प्राकृतिक साधन रहे हैं। इन्हीं परिस्थितियों के अनुसार उनके जीवन-मूल्य, रहन-सहन, रीति-रिवाज एक दूसरे से भिन्न मिलते हैं। बाहरी दुनियां के समझने का उनका अपना निजी दृष्टिकोण है।

वास्तव में आदिवासी लोगों की जीवन-पद्धति से अनभिज्ञ लोग आज भी उन्हें असभ्य और जंगली समझते हैं। केवल इनके संगीत, नृत्य तक ही सोच जा पाती है। परन्तु यहां यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उनकी वास्तविक जिन्दगी के समझने-परखने पर ही, हम यह भी पायेंगे कि सभ्यता एवं उन्नति का दम भरने वाला आधुनिक समाज कई विषयों में उनसे बहुत पीछे है।

इस परिप्रेक्ष्य में कई बार यह स्पष्ट कर पाना बड़ा ही कठिन है कि किन-किन लोगों को अनुसूचित जन-जातियों में वर्गीकृत किया जाए। आज कल कई जन-जातियों पर बाहरी प्रभाव पड़ चुके हैं व उनके स्वभाव में परिवर्तन आ गया है। बहुत-सी जन-जातियां पढ़ लिखकर सुशिक्षित तथा प्रगतिशील बन चुकी हैं, तथा उन्नत समाज से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हैं।

हमारे यहां विभिन्न प्रकार की आदिवासी जन-जातियां पाई जाती हैं। उनके रीति-रिवाज, पहनावा, शृंगार, जादू-टोने, सामाजिक मूल्य, नैतिकता, स्वच्छन्दता आदि न जाने कितनी ही बातें आज भी उन्नत समाज के बहुत से लोगों को पता नहीं हैं। यायावर (घुमन्तु) जातियों को भी अनुसूचित जन-जाति वर्ग में ही माना जाता है। भारत की कुछ प्रमुख जन-जातियां इस प्रकार हैं:—

मेघालय के मातृ-निष्ट प्रधान (गोरो और खासी), नगालैंड के (अंगामी), चेंखें सांग, कोन्याक, आओ, सेमा, लोथ, फोम चांग ('नगा'), नृत्य भूमि मणिपुर के (मेथई, लोई), मिजोरम के कद्दावर (लुगाई, रोल्टे, हभार, पोई), छोटा नागपुर के (विरहोर) उड़ीसा के सांप तक खा जाने वाले (ज्वांग) मध्य प्रदेश के कोरवा, कोच्चिन के कादर, महाराष्ट्र के कतहारी (ये सब जंगली खाद्य पदार्थ इकठ्ठा करने वाली जन-जातियां हैं)।

इनके अलावा गद्दी, मोटिया, किन्नर, सन्थाल, भील, गोंड, खस, कारकूज, थास इत्यादि। कई जगह बड़े-बड़े कबीले हैं जहां के लोग सरदार को ही सब कुछ समझते हैं।

आदिवासी जातियों की एक नहीं अनेक समस्यायें हैं। उदरपूर्ति हेतु कठोर परिश्रम के साथ-साथ प्रकृति से अनवरत संघर्ष करना पड़ता है। सुदूरवर्ती स्थानों में रहने के कारण बाहरी उन्नत समाज से उनका सम्पर्क न के बराबर रहता है। जहां इनका सम्पर्क हुआ वहां इन्हें अत्याचार, शोषण एवं अन्य दुविधाओं का सामना करना पड़ा है। कुछ संस्थाओं ने धर्म परिवर्तन द्वारा उनकी लाचारी व भोलेपन का फायदा उठाकर, उनके सांस्कृतिक मूल्यों को आघात पहुंचाया है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार का ध्यान इन आदिवासी जातियों की ओर गया तथा इनके चहुमुखी विकास हेतु विस्तृत और कल्याणकारी योजनाएं बनाई गईं। प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद एवं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इनके पुनर्रोत्थान हेतु अथक प्रयास किये। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भी इन्हें राष्ट्र की प्रगतिशील मुख्य धारा से जोड़ने के सराहनीय कार्य किये। कई स्वैच्छिक स्वयंसेवी

संस्थायें भी मैदान में आईं। स्वर्गीय श्री ठक्कर बापा द्वारा गांधीजी के सहयोग एवं प्रेरणा से 1948 को स्थापित "भारतीय आदिम जाति संघ" ने इस दिशा में काफी रचनात्मक कार्य कर आशातीत सफलतायें प्राप्त कीं। यह संस्था आज भी इसी संदर्भ मे प्रयासरत है। इसके अलावा अनेक संस्थायें इस क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी हैं।

स्वर्गीय श्रीमति इंदिरा गांधी के नेतृत्व में इन अनुसूचित जन जातियों को विशेष प्राथमिकता दी गई। 20 सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत विस्थापित आदिवासियों को फिर से बसाने, आबंटित भूमि पर कब्जा दिलाने का इन्तजाम, शिक्षण कार्यक्रमों का गठन, पर्याप्त धन मुहैया करवाने एवं बेहतर निदेशन की व्यवस्था का प्रावधान रखा गया। प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी तो इस दिशा में अनुकरणीय रुचि दिखा रहे हैं। उनका दूरस्थ स्थित आदिवासियों से उन्हीं के द्वार पर जाकर मिलना-जुलना व उनके दु:ख दर्दों को समझना इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि उनके दिल में इनके लिए कितना दु:ख दर्द है। वे खामियों को दूर करने एवं अमल पर कड़ा नियन्त्रण रखने में पक्ष में हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में अज्ञानता, रूढ़िवादिता, बीमारी नियन्त्रण, गरीबी निवारण, वृक्षारोपण, शुद्ध जल आपूर्ति, आवास मुहैया कराने, शिक्षित करने, रोजगार देने, कुटीर धन्धे लगाने, सड़क बनाने, सस्ता खाद्यान्न मुहैया कराने, महिला-शिशु उत्थान इत्यादि अनेक क्षेत्रों में सरकार द्वारा कई कल्याणकारी कार्यक्रम बनाये गये हैं ताकि ये लोग भी देश की सामाजिक मुख्यधारा का अंग बन सकें।

"समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत" आदिवासी युवकों को रोजगार, शिशु पोषाहार, महिला उत्थान आदि के लिए विशेष कार्य किये गये हैं। इन्हें 50% तक अनुदान पर ऋण उपलब्ध कराये जा रहे हैं। गरीबी रेखा से नीचे परिवारों को 5000 रुपये तक अनुदान दिया जा रहा है। वानिकी कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू जन-जातीय कल्याण है। इन लोगों की एक तिहाई आय वन उत्पादों से है। वृक्षारोपण हेतु उन्हें भूमि उपलब्ध कराई जा रही है। 'ट्राइसेम' के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रम लागू किये गये हैं। जन-जातियों को इनमें 30% तक स्थान मिलता है। 1986-87 के दौरान 39% जन-जातियों को प्रशिक्षण प्रदान किया गया। 'इन्दिरा आवास योजना' के तहत काफी संख्या में मकान बनाकर आदिवासियों को अलाट किये गये हैं। छठी योजना अवधि के दौरान अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए सृजित किये गए रोजगार का मौटे तौर पर 45% था। आदिवासी क्षेत्रों में सड़कें बनाने हेतु 6.50 करोड़ निवेश किया गया। 1980-85 के दौरान 39.67 लाख परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने में आर्थिक मदद दी गई। सातवीं योजना (1985-90) में 40 लाख परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य रखा गया है। इसी योजना के एक वर्ष (1985-86) में निर्धारित 8,34,537 परिवारों के लक्ष्य को लांघ कर 8,73,100 परिवारों को मदद दी गई है। दिसम्बर, 1986 तक 256.30 मिलियन श्रम दिनों के सृजन में से आदिवासी जन-जातियों का अंश 19% रहा है।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अनुसूचित जन-जाति के कल्याण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। प्रत्येक योजना में पूंजी निवेश की बढ़ती दर यह दर्शाती है कि सरकारी सोच इनके सम्पूर्ण विकास हेतु कटिबद्ध है। पांचवीं योजना में इस क्षेत्र हेतु पूंजी निवेश 1,100 करोड़ रुपये था जो छठी योजना में बढ़ाकर 5,535,50 करोड़ रुपये हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार द्वारा विशेषअनुदानके रूप में 750 करोड़ रुपये सातवीं योजना हेतु स्वीकृत किये गए हैं।

निस्सन्देह आजादी के 40 वर्ष बाद आदिवासी जातियों में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। कई स्थानों पर तो इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई हैं। इन्हीं कल्याणकारी योजना का सुफल है कि आज आदिवासी समाज इनमें विशेष रुचि ले रहा है। बाहरी दुनिया को अछूत समझने के दृष्टिकोण में निरन्तर बदलाव आ रहा है। आधुनिक सामाजिक परिवेश के अपनाने में अब इतनी हिचक उनमें दिखाई नहीं देती जोकि आजादी से पूर्व साफ देखने में आती थी।

कहीं-कहीं कुछ खामियां एवं अनियमितताऐं भी देखने में आ रही हैं। सरकार इन्हें दूर करने व विकास कार्यक्रमों को लागू करने में बहुआयामी दृष्टिकोण अपना रही है। आज आदिवासी जातियां भी उन्नति की ओर अग्रसर हैं तथा देश के विकास एवं उत्थान में अपना पूर्ण योगदान दे रही हैं।

मकान नं. 6/35, कल्याण नगर,
सोनीपत-131001

# आदिम जनजाति सहरिया समाज और विकास

प्रभात कुमार सिंघल

समरानिया में आदिवासी सहरियों की हाट

राजस्थान के विभिन्न अंचलों में कई आदिवासी जनजातियां अपनी एक अलग संस्कृति और समाज लिए, आधुनिकता की चमक-दमक और भागम-भाग से कोसों दूर ठेठ घने जंगलों में और पर्वतीय इलाकों में पल रही हैं।

भील, मीणा, गरासिये, डामोर और कैथोड़ी जनजातियों के मध्य राजस्थान के कोटा जिले में निवास करने वाली सहरिया जनजाति राजस्थान में एक मात्र घोषित आदिम जाति है। सहरिया पार्वती नदी के पूर्वी तट एवं मध्य प्रदेश की सीमा के समीप शाहबाद एवं किशनगंज के जंगलों में निवास करते हैं। दो लाख 99 हजार 801 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में उक्त तहसीलों के कुल 307 ग्राम आबाद एवं 128 ग्राम गैर आबाद हैं। इस क्षेत्र की कुल जनसंख्या सन् 1981 की जनगणना के आधार पर एक लाख 45 हजार 733 है। इसमें से 47 हजार 864 सहरिया आदिम जाति के लोग हैं। यहां 2 लाख 65 हजार 461 एकड़ में जंगल हैं जहाँ बहुसंख्यक सहरिया बिखरे हैं।

### आलसी स्वभाव

सहरिया आदिम जाति के विषय में कहा जाता है कि जिस प्रकार शेर एक बार भोजन कर दूसरे समय की चिंता नहीं करता उसी प्रकार सहरिया एक समय खाना मिलने पर आराम से सोता है। दूसरे समय की चिन्ता ये प्रायः नहीं करते। जंगली कंद मूल, फल, शाक-पात, रूखा-सूखा खाकर ये अपना गुजर-बसर करते हैं। आलसी स्वभाव एवं अज्ञानता सहरियों के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। अधिकांश सहरिया भूमि संबंधी समस्याओं में उलझे रहते हैं। आर्थिक उत्थान के अनेक कार्यक्रमों का भी पूरा लाभ नहीं उठा पाते और पीढ़ियों तक कर्जदार बने रहते हैं।

### आर्थिक उत्थान के प्रयास

अत्यंत पिछड़ी जनजाति सहरिया के आर्थिक एवं

सामाजिक उत्थान के प्रयास आजादी के बाद ही सन् 1959 से प्रारंभ किये गये। राजस्थान आदिम जाति सेवा संघ के माध्यम से सर्वोन्मुखी प्रवृतियों को हाथ में लिया गया। जंगल के ठेकेदारों को विश्वास में लेकर वन श्रमिक सहकारी समितियों का गठन किया गया। वर्ष 1952 से इनके पुनर्वास के प्रयास भी किये गये। पुनर्वास कार्यक्रम के तहत गांवों में बसाया गया और खेती के लिए 15 से 20 बीघा जमीन व बैल-जोड़ी भी दी गई। बीस सूत्री कार्यक्रम में भी यह प्रवृत्ति लागू की गई।

आजादी के 28 वर्ष पश्चात राजस्थान में जनजातियों के विकास एवं उत्थान पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने के लिए सन् 1975 में जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग की स्थापना की गई। सन् 1978 में इस विभाग का मुख्यालय जयपुर से बदल कर उदयपुर कर दिया गया। इसी वर्ष इस विभाग के नियंत्रण में सहरियों के आर्थिक उत्थान एवं विकास के लिए पृथक से सहरिया विकास परियोजना आरंभ की गई।

वर्ष 1978 से मार्च 1987 तक एक दशक में इनके उत्थान व कल्याण के लिए 1.83 करोड़ रुपये की धन राशि उपलब्ध कराई गई तथा इसमें से विविध विकास कार्यक्रमों पर 1.78 करोड़ राशि का उपयोग किया गया। इस विषय में जिला कलेक्टर श्री धर्मवीर के अनुसार विगत दो वर्षों 1985-86 एवं 1986-87 में इससे पूर्व वर्षों की अपेक्षा अधिक धन राशि का उपयोग किया गया। वर्ष 1987-88 में 25 से 30 लाख रुपये का व्यय किये जायेंगे। नवंबर 87 तक लगभग 13 लाख रुपया व्यय हो चुका है।

आर्थिक व सामाजिक उत्थान के प्रयासों से यद्यपि बड़ा भारी परिवर्तन तो नहीं परन्तु बदलाव अवश्य आया है। उनके बच्चे पाठशाला आने लगे हैं। आंगनबाड़ी केन्द्र इस काम में विशेष सहायक बने हैं। महिलाएं विशेष रूप से परिवार कल्याण कार्यक्रमों के प्रति जागरूक बनी हैं। भूत-प्रेत के अन्ध विश्वास से छूट कर अब स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवाओं का लाभ भी उठाने लगे हैं। वन संपदा पर निर्भरता कम होने लगी है। सहरियों को कालोनियों में भी बसाया गया है। सिंचाई साधनों का भी विकास हुआ है। मजदूरी के दाम भी पहले से अधिक मिलने लगे हैं। सहरियों को पशुपालन संबंधी भी अनेक सुविधाएं जुटाई गई हैं। पेय जल और विद्युत विस्तार की दिशा में प्रयास किये गये।

**समाज-संस्कृति**

काला रंग, चपटी नाक, घुंघराले बाल, लंबा कद तथा मोटे होंठ वाले सहरियों की उत्पत्ति का कोई प्रमाण नहीं मिलता। माना जाता है कि मुगल काल में इनको सहरिया कहा जाने लगा। सहरियों की बस्ती गांव के बाहर होती है। जहाँ वे रहते हैं उसे सहराना कहते हैं। बीच में होता है छतरीनुमा पंचायती बंगला तथा आसपास झोंपड़ियां। यह बंगला अत्यंत लोकप्रिय होता है। सहराना दिन भर सूना पड़ा रहता है रात में चहकता है। अपने अतिथियों को बंगले का सुख देने वाले सहरिया स्वयं घास-फूंस की टापरी में रहते हैं। टापरी के एक कोने में चूल्हा उस पर तवा, पास ही सिल-बट्टा, ऊपर दीवार में आमने-सामने धसी दो लकड़ियां, उस पर पीढ़ियों से चली आ रहीं गूदड़ी, एक-दो बकरी वहीं बंधी, इसी में सोना-इसी में खाना, शयन कक्ष भी यहीं तो रसोई भी यहीं और पशुओं की ठान भी।

सामाजिक संगठन की दृष्टि से विवाह के पश्चात पुत्र की झोंपड़ी अलग बना दी जाती है। भरन-पोषण के लिए जमीन का हिस्सा भी दे दिया जाता है या फिर पति-पत्नी मजदूरी कर पेट भरते हैं। परिवार की पूरी जिम्मेदारी बड़े लड़के पर होती है। पैतृक संपत्ति पर छोटे लड़के का अधिकार होता है। विधवा मां की जिम्मेदारी भी छोटे लड़के की होती है।

विवाह के अपने नियम, उप-नियम हैं। गौत्र का ध्यान रखा जाता है। प्रायः एक हीं गांव में विवाह नहीं करते। जाति के बाहर विवाह अपराध मानते हैं। ऐसा करने वाली लड़की को दंड मिलता है। विवाह के एक साल पश्चात गौणा करने की परंपरा हैं। नाता प्रथा का प्रचलन भी सामाजिक परंपरा है। महिलाओं में गोंदना लोकप्रिय है। तेजाजी लोक देवता हैं। धार्मिक अंध-विश्वासों के कारण भूत-प्रेत में विश्वास करते हैं। पर्वों पर इनका पूरा विश्वास है। उत्सवों, मेलों-ठेलों के अवसरों पर सहराने स्वरों के माधुर्य से गूंज उठते हैं। लोक संगीत और सहरिया के मनोरंजक क्षणों को सहराने में ही देखा जा सकता है। मादक रातों में स्वांग भर-भर कर नाचते-गाते समय उन्हें किसी बात की चिंता नहीं रहती। आर्थिक अभावों को भूलकर अपनी ही मस्ती में खोये रहते हैं सहरिया।

**जिला सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,**
**के. आर. 247,**
**सिविल लाइन्स,**
**कोटा (राजस्थान) 324001**

# सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों का विकास

बी.पी. शर्मा

छत्तीसगढ़ अंचल के बिलासपुर जिला मुख्यालय से पोंड़ी-उपरोड़ाऔर कटघोराविकास खंड क्रमश:120 कि मीऔर 80 कि.मी दूरस्थ है जो छत्तीसगढ़ क्षेत्र के सर्वाधिक जंगली एवं दुर्गम क्षेत्र माने जाते हैं। इन्हीं विकास खंडों की गोद में "मातिन" नाम की वह कुख्यात पहाड़ी सुदूर तक फैली है। जिसके लिए यह किंवदन्ति विख्यात है कि 'जहर खाय न माहुर जाय, मरना हो तो मातिन जाय'। इसी पहाड़ी के गर्भ में बसे सैंकड़ों पहुंचहीन ग्राम और उनमें रहने वाले आदिवासीजन आज भी सभ्यता के कोलाहल से दूर रहकर विकास किरणों की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे हैं। पता चला है कि अब तक किसी भी संध्या ने इस अंचल में बसने वाले आदिवासियों की पीड़ा व कष्ट की कहानियों उनकी ज्वलन्त समस्याओं तथा उनके शोषण से रुबरु साक्षात्कार भी नहीं किया है, कारणस्वरूप आज भी ये भोलेभाले वनपुत्र आदिवासी पटवारी को ही अपना सर्वस्य जानते हैं, व मानते भी हैं।

बिलासपुर जिले की लगभग 31 लाख आबादी के सुखदुख से जुड़े तथा 3,500 ग्रामों के विशाल जिले में विकास कार्यों को जन-जन तक पहुंचाने का गुरुत्तम दायित्व जिन कंधों पर है, अगर ऐसा कोई अधिकार सम्पन्न अधिकारी आदिवासियों की समस्याओं से साक्षात्कार करने के लिए दुर्गम वनांचलों में पैदल यात्रा कर उनकी समस्याओं को करीब से समझे, सुने और देखे तथा यथासंभव उनका स्थल पर ही निराकरण करे तो निश्चय ही एक सुखद आश्चर्य होता है। बिलासपुर जिले के 33 वर्षीय युवा कलेक्टर श्री उदय वर्मा संभवत: प्रदेश के प्रथम कलेकटर हैं जिन्होंने आदिवासी बहुतल अंचल के दुर्गम व पहुंचहीन ग्रामों की 37 कि.मी. पैदल यात्रा करके ग्राम कटोरीनगोई, जटगा, नवापारा, बेतलो, बर्रा, हरदेवा, सुखरीताल, सरमा और कोरबी के आदिवासियों को प्रत्यक्ष सुना और देखा।

इन साधन-विहीन ग्रामों की पदयात्रा में उनके साथ तानाखार विधान सभा क्षेत्र के विधायक श्री हीराराम मरकाम के अलावा पत्रकारों का दल, राजस्व विभाग. स्वास्थ्य विभाग, लोक स्वास्थ्य अभियांत्रिकीय विभाग, वन विभाग तथा विकास खंड पोंड़ी-उपरोड़ा के अधिकारीगण भी सम्मिलित हुये।

कलेक्टर वर्मा ने अपनी पद यात्रा का श्रीगणेश कटघोरा-पसान मार्ग पर स्थित ग्राम जटगा से किया। प्रथम ग्राम जटगा से 3-4 कि.मी. दूर पद यात्रियों का यह दल ग्राम तलमली, नवापारा और बेतलो के दुर्गम क्षेत्र से गुजरा जहां ऊंची-नीची और दुर्गम पहाड़ियों पर आवागमन के लिए मात्र टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर है। इन कठिन रास्तों पर साईकिल चलाना भी टेढ़ी-खीर है।

श्री वर्मा ने जिन ग्रामों की पदयात्रा की उनमें जटगा ग्राम को छोड़कर कहीं भी विद्युत व्यवस्था सुलभ नहीं है। शासन द्वारा यद्यपि अधिकांश ग्रामों में स्वच्छ पेयजल सुलभ कराने के लिए हैंडपम्प लगवाये गये हैं। परन्तु आदिवासी लोग इन पम्पों का इस्तेमाल प्राय: नहीं करते हैं तथा वे नालों, खेतों व झिरियों का पानी पीते हैं। शिक्षा के प्रति आदिवासी पालकों में लगाव की नितान्त कमी है। सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों की जानकारी जन-जन तक पहुंचाने वाले प्रचार माध्यमों में से आज तक यहां कोई नहीं पहुंचा है। इन ग्रामों में कोई अखबार भी नहीं पहुंचता है, केवल एक ट्रांजिस्टर ग्राम जटगा व 2 ट्रांजिस्टर कोरवी ग्राम में पाये गए हैं जिनका उपयोग आदिवासी जन स्थानीय कार्यक्रमों को सुनकर मात्र मनोरंजन के लिए करते हैं। मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रमों के प्रति आदिवासियों को न ही कोई जानकारी है और न ही उनका इस तरफ कोई रूझान है। ग्राम जटगा में विद्युत व्यवस्था हेतु तथा 2 शालाओं की मरम्त हेतु 40,000 रुपये का अनुदान तत्काल स्वीकृत किया गया। बेतलो ग्राम में एक हैंडपंप हेतु 5,000 रुपये तथा ग्राम नगोई और बेतलों में 2 स्टाप डेम निर्माण हेतु 50,000 रुपये मंजूर किए गए। स्टाप डेम निर्माण हो जाने से जहां एक ओर विस्तार के लिए जल संग्रहण हो सकेगा वहां 50 से 100 एकड़ रकबा में सिचाई भी की जा सकेगी। अपनी सरकारी पदयात्रा के दौरान उन्होंने 73 नामान्तरण के प्रकरण 26 ऋण पुस्तिकाओं का वितरण भी स्थल परकिया। इसके अतिरिक्त पटवारी रिकार्ड की नकलें कृषकों को दिलवायी गईं। साथ गए चिकित्सकों के दल ने जहां शिशुओं का

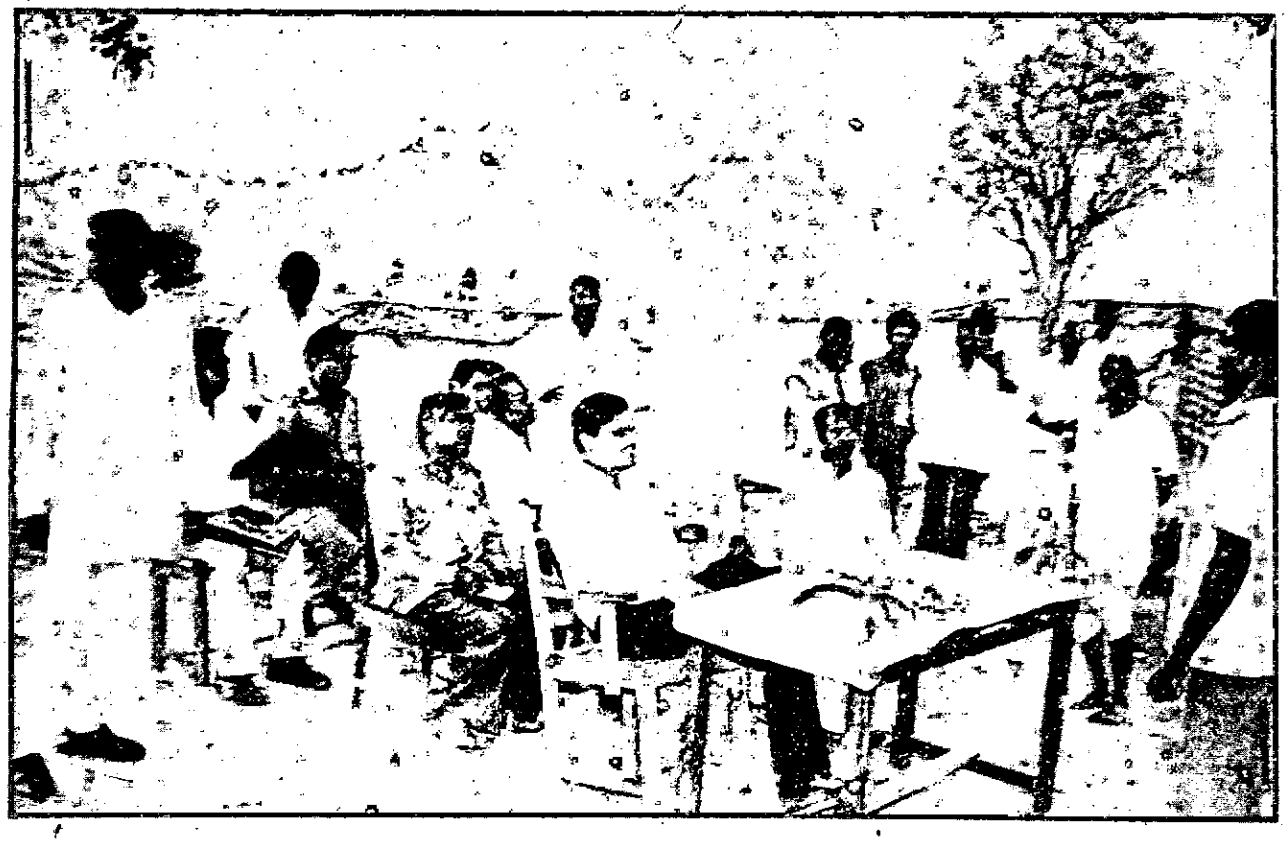

आदिवासियों की समस्याओं से साक्षात्कार करते हुए कलेक्टर श्री उदय वर्मा

स्वास्थ्य परीक्षण किया वहीं 220 पीड़ित जनों को औषधि का वितरण भी किया गया। ग्राम कोरबो में 65 एकड़ के प्रक्षेत्र में रेशम कीड़ा पालन केन्द्र व 25 एकड़ में फलोद्यान योजना का शुभारंभ भी किया गया। ग्राम पंचायत द्वारा बेघर लोगों को "इंदिरा आवास योजना" के अन्तर्गत बनाये जा रहे 22 मकानों के निर्माण कार्य का भी कलेक्टर ने समुचित निरीक्षण किया। अपनी इस पद यात्रा में श्री वर्मा व वनमण्डलाधिकारी ने आदिवासियों को जंगलों की अनियंत्रित कटाई के प्रति न केवल सचेत किया बल्कि इसके नुकसान भी उन्हें समझाये। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को परिणामोन्मुखी बनाने के भी एक योजना को उन्होंने अंतिम रूप दिया।

2 दिनों की पद यात्रा के दरम्यान आदिवासी जनों के विकास के लिए जिलाध्यक्ष ने सरमा-सुखरीताल तक 3.5 कि.मी. तक सड़क निर्माण के लिए 40,000 रुपये का अनुदान स्वीकृत करवाया। छात्रावासों, शालाभवनों व पंचायत घरों के निर्माण व जीर्णोद्धार को भी अनुदान स्वीकृत किया गया। अभिशप्त मातिन पहाड़ी का यह भू-भाग जिसमें सिंगरैली गोंड़ जनजाति के आदिवासी निवास करते हैं अब निश्चित ही विकास की किरणों से आलोकित हो सकेगा।

**क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी**
**भारत सरकार**
**बिलास पुर (मध्य प्रदेश)**

# खुजली की रोकथाम कैसे करें

डा. प्रकाश चंद्र गंगराड़े

हमारे देश में खुजली की बीमारी से लगभग 20 प्रतिशत व्यक्ति पीड़ित हैं। यह त्वचा की एक ऐसी बीमारी है जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक किसी को भी हो सकती है।छूत की बीमारी होने के कारण यदि घर में एक व्यक्ति को खुजली हो जाए तो थोड़े ही दिनों में सारे परिवार में यह फैल सकती है। यहां तक कि स्कूल या कॉलेज में एक विद्यार्थी इससे पीड़ित हो तो वह सारे विद्यार्थियों में यह बीमारी फैला सकता है।

यों तो खुजली की बीमारी का उल्लेख ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व महर्षि आत्रेय ने किया था लेकिन 1834 में सीमों फ्रांस्वा ने इसके कीटाणुओं को पहचाना। खुजली केवल त्वचा का रोग है इसे सबसे पहले डा. फान हेब्रा ने 1844 में खोजा। 1892 में जॉन स्नो ने खुजली को एक छूत की बीमारी प्रमाणित किया।

खुजली की शिकायत मुख्य रूप से गर्दन के नीचे सभी स्थानों पर हो सकती है लेकिन उंगलियों के बीच, कुहनी के बाहर, कलाई के आसपास, कांखों में, कमर में, गुप्त अंगों में, नाभि के आसपास, रानों व नितंब पर विशेष रूप से होती है। बच्चों के सिर में बालों के नीचे भी कभी-कभी खुजली होने लगती है। वैसे यह रोग पीठ, कंधे, छाती, चेहरे, कान और सिर पर अपना प्रभाव बहुत कम ही दिखा पाती है। गर्मी, बरसात और सर्दी तीनों ही मौसम में यह अनुकूल अवसर पाकर कम-ज्यादा फैलती रहती है।

यह रोग स्वतंत्र रूप से बहुत कम होता है। अक्सर अनेक रोगों के साथ लक्षण के रूप में प्रकट होता है। सामान्य रूप से इसका प्रभाव अस्थायी होता है लेकिन उचित व शीघ्र इलाज न कराया जाए तो यह बीमारी लम्बे समय तक रोगी को तकलीफ पहुंचाती रहती है।

### रोग के कारण

आयुर्वेद मत से यह त्वचा व रक्तगत श्लेष्मा, वात तथा श्वेष्मा, पित्त से उत्पन्न होता है जबकि एलोपैथिक मतानुसार यह बीमारी एक प्रकार के सूक्ष्म परजीवी 'सारकोप्टिस स्कैबिआई' (Sarcoptes scabiei) के द्वारा होती है। मात्र बिन्दू के समान दिखाई देने वाला वह परजीवी अपने आठ पैरों की सहायता से हमारा खून चूसता है। इसके अलावा शरीर स्वच्छ न रखने, मैले-कुचैले कपड़े पहनने, कई दिनों तक स्नान न करने, किसी विषैले पदार्थ के सम्पर्क में आने, एक ही तौलिये से सभी का हाथ-पैर पौंछना, सीलन भरे छोटे कमरे में अधिक लोगों का रहना, रक्त में विषाणुओं की उपस्थिति होना, अनेक रोगों के उपद्रवों के कारण, दवाओं के कुप्रभाव से, दूषित जल से नहाना, गर्म, शीत ऋतु के प्रभाव से, मधुमेह, कामला, पेट के कीड़े, बवासीर, वृद्धावस्था में त्वचा क्षीण होने पर भी खुजली आने में सहायक कारण बनते हैं।

### रोकथाम के उपाय

खुजली की बीमारी क्यों हुई है, इसका कारण सबसे पहले जान लें। वे सभी कारण जिनसे खुजली फैलती है, यदि हम उन्हें जान लें और उनसे बचने के उपाय अपनाएं तो इस रोग से आसानी से बचा जा सकता है। यदि दुर्भाग्यवश आपको यह रोग हो गया हो तो उसे बढ़ने से रोकने के लिए पहले निम्न उपाय प्रयोग में लें फिर चिकित्सा कराएं।

★ शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखें। नियमित रूप से स्नान करें। दूसरों के पहने हुए कपड़े बिना धोये न पहनें। बिस्तर, वस्त्र, चादर इत्यादि नियमित रूप से बदलें। रोगी के नाखून कटवा दें।

★ रोगी के साथ परिवार के अन्य सदस्यों का भी उपचार कराएं। अन्यथा बीमारी घर ही घर में फैलती रहेगी। नायलोन, ऊन और विशेष रंगयुक्त खुजली पैदा करने वाले कपड़े न पहनें। बच्चों को खुजली हो जाए तो उन्हें स्कूल न भेजें। हमेशा अपने ही तौलिए, कपड़े और बिछौनों का इस्तेमाल करें।

### चिकित्सा

★ नारियल के तेल में कपूर मिलाकर सारे बदन में लगाने से खुजली में लाभ होता है। इसे कई दिनों तक नियमित रूप से करना चाहिए। 50 ग्राम सरसों के तेल में 10 ग्राम आक का दूध डालकर पकाएं। दूध के जल जाने पर एक शीशी में भर लें। संपूर्ण शरीर पर मालिश करने से भी पूरे बदन की खुजली दूर हो जाती है।

★ चूना और हल्दी दस-दस ग्राम चूर्ण में लें और बीस

ग्राम कपूर के चूर्ण में मिलाकर फिर नारियल के तेल में अच्छी तरह से मिला लें। शरीर के हर भाग की खुजली में लगाएं।

★ आयुर्वेदिक पेटेंट दवाओं से खुजलीना टेब्लेट (डाबर) की एक-एक गोली दिन में दो या तीन बार आवश्यकतानुसार खाना व इसी नाम से उपलब्ध तेल का बाहय प्रयोग दिन में दो बार करना शीघ्र लाभ पहुंचाता है। खुजली वाली जगहों पर चर्मारोगारि (बैद्यनाथ) मल्हम लगाना बहुत गुणकारी पाया गया है।

★ एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में मुख्य रूप से गंधक (सल्फर) और बेंजाइल बेंजोएट नामक दवाओं का बाहय प्रयोग खुजली दूर करने में बड़ा कारगर उपाय माना गया है। रोगी को कीटाणुनाशक साबुन टेटामासॉल लगाकर गुनगुने पानी से नहला दें। फिर गंधक का दस प्रतिशत का मल्हम बड़ों को, बच्चों को पांच प्रतिशत का मल्हम लगाकर सुला दें। सुबह नहलाकर साफ कपड़े पहनाएं। यह प्रक्रिया तीन दिन नियमित रूप से करें। खुजली दूर हो जाएगी।

गर्म पानी से अच्छी तरह नहला कर रोगी का बदन तौलिए से रगड़ कर पोंछ दें। बाद में गर्दन के नीचे के समस्त शरीर में 25% बेंजाइल बेंजोएट का घोल लेप कर दें। सूखने पर फिर एक बार दवा लगा दें। पूरी रात लगा रहने दें। इस प्रक्रिया को कम से कम दो दिन तक लगातार करें इस प्रयोग से अधिकांश रोगियों की खुजली दूर हो जाती है।

**902 एन-2,**
**हबीब गंज (भोपाल)**
**462024**

# केन्द्र द्वारा सूखाग्रस्त राज्यों को दवाई की सप्लाई

आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और केरल में अतिसार के छुटपुट मामलों को छोड़कर सूखाग्रस्त राज्यों में स्वास्थ्य संबंधी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इन क्षेत्रों से किसी प्रकार की महामारी का कोई भी समाचार नहीं मिला है।

केन्द्र ने राज्यों की आपातकालीन जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्नाटक को हैजा-रोधी टीकों की पांच लाख खुराकें और राजस्थान को टीकों की 50,000 खुराकें सप्लाई की हैं।

राजस्थान को सूखे से राहत प्रदान करने के लिए मेडिकल स्टोर्स की तत्काल सप्लाई करने के प्रबंध किए गए हैं। राजस्थान से हाल ही में इस आशय का अनुरोध प्राप्त हुआ है।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय सूखे की स्थिति के स्वास्थ्य संबंधी पहलू पर लगातार नजर रखे हुए हैं। इस उद्देश्य के लिए स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अधिकारियों को सूखे की स्थिति का स्थान पर जायजा लेने के लिए राज्यों में भेजा जा रहा है। इसके साथ ही राज्यों को मेडिकल स्टोर्स की सप्लाई भी उपलब्ध कराई जा रही है।

सूखाग्रस्त राज्यों ने जल स्रोतों को प्रदूषण रहित करके लोगों को स्वच्छ कराने के लिए संगठित प्रयास शुरू कर दिए हैं।

महाराष्ट्र में जल स्रोतों को प्रदूषण रहित बनाने के पर्याप्त उपाय किए गए हैं। हरियाणा में, जहां लोग कुंओं का प्रयोग करते हैं, केवल प्रदूषणरहित जल का ही प्रयोग करने के लिए एक स्वास्थ्य कार्यक्रम शुरू किया जा रहा है। कर्नाटक में 2573 से अधिक जल स्रोतों को प्रदूषणरहित बनाया जा चुका है और अब और अधिक स्रोतों को प्रदूषण-रहित बनाने के प्रयास जारी हैं। केरल को जल स्रोतों को प्रदूषण रहित बनाने हेतु कार्यक्रम में तेजी लाने की सलाह दी गई है। चंडीगढ़ के सभी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रदूषणरहित जल उपलब्ध कराया जा रहा है।

राजस्थान में पोषण संबंधी कार्यक्रम में राज्य सरकार के प्रयासों को तेज करने के लिए इण्डियन रेड क्रॉस सोसायटी की सहायता प्राप्त की जा रही है।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय में प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों ने पेय जल के स्रोतों को प्रदूषणरहित बनाने, प्रतिरक्षण और स्वास्थ्य शिक्षा के कार्यक्रमों पर अधिक बल दिया है।

प्रतिरक्षण अभियान के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में लगभग 19.5 लाख व्यक्तियों और कर्नाटक में लगभग 7 लाख व्यक्तियों को टीके लगाए गए। आंध्र प्रदेश में 57,000 से अधिक व्यक्तियों को टायफायड-रोधी टीके लगाए गए। □

# आदिवासी विकास की वैकल्पिक योजनाएँ एक मूल्यांकन

डॉ० राजेन्द्र मेनारिया

पिछले कुछ वर्षों में समाज के निर्धन एवं कमजोर वर्ग के तीव्र विकास की महत्वाकांक्षी योजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं। समाज के सबसे कमजोर वर्ग में आदिवासी परिवारों को सम्मिलित करते हैं। विकास कार्यक्रमों को बनाते समय यह आवश्यक हो जाता है कि आदिवासी समाज की कतिपय विशेषताओं, उनके सामाजिक-आर्थिक मूल्यों तथा राजनीतिक सामाजिक अन्तर्- निर्भरताओं का ध्यान रखा जाये। इसकी आवश्यकता पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 1958 में वैरियर एल्विन की पुस्तक "ए फिलोसॉफी फॉर नेफा" की प्रस्तावना लिखते समय जनजाति विकास के पंचशील सिद्धांतों के रूप में स्पष्ट कर दी थी। पंडित नेहरू ने इस बात पर जोर दिया था कि जनजाति समाज की विशिष्टताओं को ध्यान में रख कर विकास योजनायें बनाई जानी चाहिये तथा उनकी पारम्परिक कला, संस्कृति व मूल्यों का समावेश भी योजनाओं में किया जाना चाहिये। इस सन्दर्भ में हमने दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी बहुल्य इलाके में ट्राइसेम योजना तथा रेशमकीट पालन योजना की उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन किया और यह पाया की आदिवासी परिवारों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने तथा उनकी निर्धनता का निवारण करने में वही योजना अधिक सफल होगी जिसे इन परिवारों की विशिष्टताओं का समावेश करके बनाया तथा क्रियान्वित किया जाये।

ट्राइसेम योजना का अध्ययन उदयपुर तथा बाँसवाड़ा की आदिवासी बहुल पंचायत समितियों धरियावद व तलवाड़ा में किया गया था। इस योजना के अन्तर्गत चयनित युवाओं को किसी व्यवसाय विशेष में प्रशिक्षण दिया जाता है, प्रशिक्षण की अवधि में निर्वाह भत्ता दिया जाता है तथा प्रशिक्षण के पश्चात आवश्यक साज समान उपलब्ध करने के अलावा आवश्यकता होने पर बैंक से ऋण की व्यवस्था भी की जाती है। उपरोक्त सुविधाएँ यदि गैर आदिवासी युवाओं को उपलब्ध की जाती तो सम्भवतः वह आसानी से सम्मानजनक आय अर्जित कर लेता। इसके विपरीत हमारे द्वारा अध्ययन में सम्मिलित आदिवासी युवाओं के मात्र 47 प्रतिशत ने ही अपना स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ किया तथा उनकी आय एवं रोजगार के अतिरिक्त अवसरों में भी केवल सीमान्त वृद्धि ही सम्भव हो सकी। इसके विपरीत प्रशिक्षण के स्तर प्रशिक्षकों द्वारा ली गई रुचि, प्रशिक्षण केन्द्र में उपलब्ध सुविधाओं आदि के बारे में आदिवासी युवाओं की धारणा पर्याप्त उत्साहवर्द्धक थी।

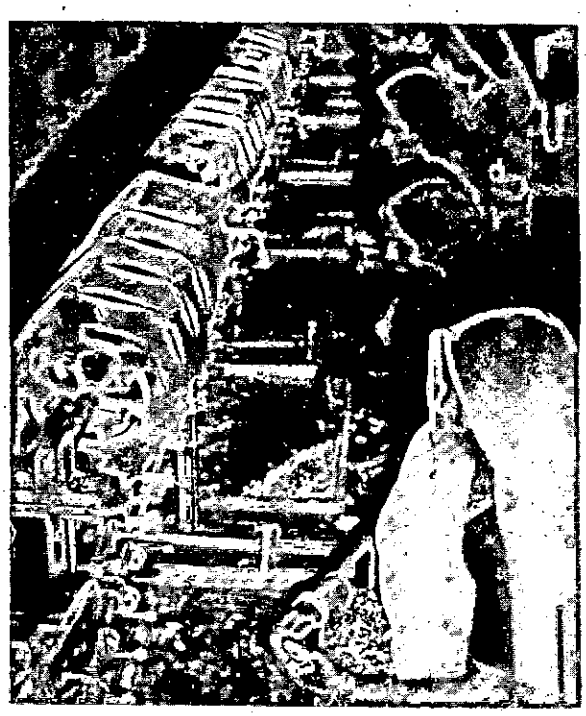

रीलिंग प्लॉट पर कार्यरत आदिवासी महिलाएं

स्वभावतः इस विरोधाभास का स्पष्टीकरण हम आदिवासियों की निरक्षरता, नये व्यक्तियों से सम्पर्क की आवश्यकता, विपणन सम्बन्धी कठिनाईयों आदि से कर सकते हैं। शहरों एवं कस्बों में बढ़ईगीरी का काम करने वाले सहज ही प्रतिदिन लगभग 35 रुपये अर्जित कर लेते हैं, जबकि बढ़ईगीरी का प्रशिक्षण प्राप्त आदिवासी युवा नया काम करने से कतराते हैं। इस आंशिक सफलता का विश्लेषण करने पर हमने यह पाया कि आदिवासी युवा सहज ही अपना गाँव एवं

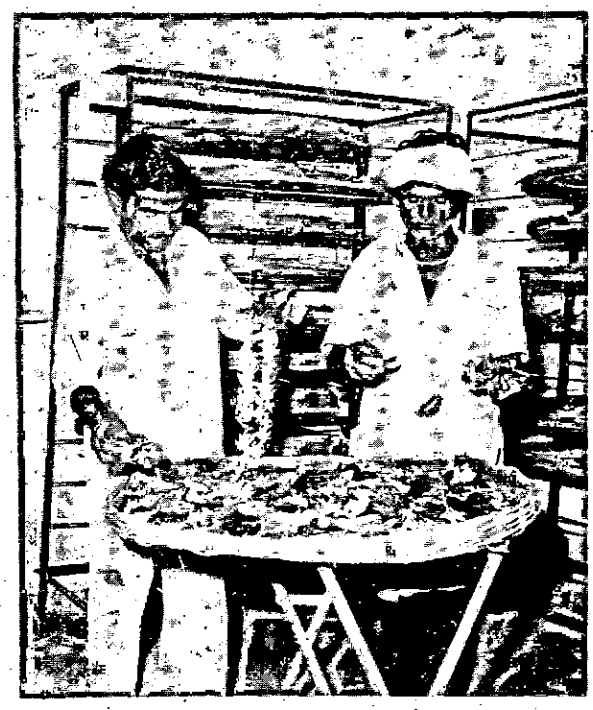

रेशम के कीड़ों को शहतूत के पत्ते खिलाते आदिवासी युवा

अपने परिजनों को छोड़ने के लिए तत्पर नहीं होता, अतः उनके उत्थान की परियोजनायें तभी सफल होंगी जब आदिवासियों से अन्यत्र बसने की अपेक्षा न की जाये। यह भी स्पष्ट है कि आदिवासी समाज के लोग अन्य वर्गों से, मुख्यतः शहरी लोगों से व्यवहार करने में कतराते हैं। इसके लिए पहले आदिवासियों का विश्वास अर्जित करना होगा। निरक्षर आदिवासियों से यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह सभी नियमों, उप नियमों तथा कानूनी दाव पेंचों की जानकारी रखें। इसके अभाव में मध्यस्थों द्वारा आदिवासियों के शोषण किये जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है।

दक्षिण राजस्थान के आदिवासी इलाके में राज्य के कृषि विभाग एवं अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से रेशमकीट पालन का कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, मिट्टी की किस्म, वर्षा की मात्रा मौसम चक्र आदि को देखते हुए यह उचित समझा गया है कि यहाँ आसानी से शहतूत की खेती करके रेशम कीट पालन किया जा सकता है। इससे कृषि के ढाँचे में विविधता लाई जा सकती है और साथ ही उपलब्ध श्रम शक्ति का लाभदायक प्रयोग भी सम्भव हो सकता है।

रेशमकीट पालन परियोज़ना के अन्तर्गत सर्वप्रथम चयनित आदिवासी परिवारों को दस दिन के लिए रेशमकीट पालन में प्रशिक्षण दिया जाता है। आवश्यक उपकरण कृषि विभाग द्वारा ही अनुदान के रूप में संबंधित परिवारों को उपलब्ध किये जाते हैं। तत्पश्चात् शहतूत की खेती के लिए आदिवासी परिवारों को प्रेरित किया जाता है। शहतूत के पौधे बड़े होने पर आदिवासी परिवारों को रेशम के कीड़े कृषि विभाग द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। इन कीड़ों का जीवनचक्र लगभग तीस दिन का होता है। इस अवधि में से कृषि विभाग द्वारा बारह दिनों की आयु के कीड़े आदिवासी परिवारों को दिये जाते हैं। अगले सत्रह दिनों तक इन परिवारों को एक दिन में चार बार नियमित अन्तराल पर शहतूत के पत्तों को निश्चित आकार में काट कर कीड़ों को खिलाना पड़ता है। इस अवधि के बाद रेशम का कीड़ा ककून में बन्द हो जाता है और कृषि विभाग के कार्यकर्ता ही इन्हें आदिवासी परिवारों के घर जाकर तौल के आधार पर खरीदते हैं। इनके मूल्यों का भुगतान दस दिनों के अन्दर-अन्दर विभाग के द्वारा चयनित परिवारों के घर जाकर कर दिया जाता है। इस प्रकार वर्ष में लगभग 70 दिन तक कार्य करके आदिवासी परिवार रेशम के कीड़ों की तीन फसले तैयार कर सकता है और प्रत्येक बार औसतन 2400 रु० की आय उस परिवार को 0.1 हैक्टेयर में शहतूत की खेती करके एक डी० एफ० एल० अण्डों से हो जाती है।

उपरोक्त परियोजना का विश्लेषण करने पर हम यह पाते हैं कि इस कार्य का निष्पादन आदिवासी परिवार अपने जाने पहचाने परिवेश में, अपने ही घर पर करते हैं। प्रारम्भिक प्रशिक्षण भी उन्हें अपने गांव के निकट स्थानों पर से उपलब्ध किया जाता है और एक व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करके अपने परिवार के अन्य सदस्यों को आवश्यक जानकारी सहज ही

शेष पृष्ठ 37 पर

# आदिवासी प्रगति के पथ पर

डा० राज

मनु की संतान "मानव" सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है। मानव जीवन देश, काल एवं वातावरण से सदैव प्रभावित होता है। प्रकृति की गोद में पारम्परिक जीवन व्यतीत करने वाले प्राणी मानव आज आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति से अपरिचित हैं। रहन-सहन का स्तर सामान्य है परन्तु उनका जीवन-स्तर अनेक दृष्टियों से सराहनीय कहा जा सकता है। ये मनु पुत्र "आदिवासी" कहलाते हैं।

पर्वत शृंखलाओं से आवृत जन-जीवन नागरिक सभ्यता से तो अपरिचित हैं ही, साथ ही पारस्परिक संबंध अत्यल्प हैं क्योंकि इनके आवागमन के साधन अपर्याप्त हैं॥ कश्मीर से स्वराज द्वीप (अंडमान-निकोबार) एवं कच्छ से अरुणाचल तक संपूर्ण भारत के कई राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों में लगभग 5.17 करोड़ आदिवासी पाए जाते हैं। ये आदिवासी लगभग 250 समुदायों में रहते हैं। विविध स्थानों पर निवास करके देश, काल और वातावरण के अनुसार भोजन करने के आधार पर ये आदिवासी वर्गीकृत कर दिए गये हैं, किन्तु इनकी विशेषताएं तथा समस्याएं लगभग समान हैं।

आधुनिक युग में सभ्यता के विकास के कारण मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं मानवीय मूल्यों पर विजय प्राप्त करती जा रही हैं, परन्तु राजस्थान के भील, मध्य प्रदेश के गोंड, बिहार के संथाल एवं असम के नगा मानव जीवन के आदर्श स्वीकार किए जा सकते हैं।

राजस्थान के भील शारीरिक दृष्टि से छोटे कद, चौड़ी नाक तथा काले रंग वाले होते हैं। मानसिक दृष्टि से अत्याधिक प्रतिभावान एवं परिश्रमी होते हैं। ऐसे निपुण आखेटक विश्व के मानचित्र पर शायद ही कहीं मिलेंगे।

भील अपने आवास, भूमि से अधिक ऊंचाई पर बनाते हैं ताकि वर्षा एवं जंगली जानवरों का प्रभाव न पड़ सके। मकानों में खिड़कियां प्रायः नहीं दिखाई देती केवल एक तंग दरवाजा होता है। भील कठिन परिश्रमी एवं अत्याधिक निष्ठावान होते हैं। रूद्र के उपासक ये भील ईमानदारी की दृष्टि से आधुनिक मानव के लिए आदर्श हैं।

भीलों के सामाजिक जीवन की जितनी भी सराहना की जाए थोड़ी है। इनका सामाजिक जीवन विशेष रूप से महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है। प्रत्येक गांव का मुखिया सच्चे अर्थों में गांव का व्यवस्थापक होता है। पारिवारिक जीवन में भीलों में सम्मिलित परिवार प्रथा विद्यमान हैं। परिवार में पिता का स्थान सर्वोच्च होता है। पिता की संपत्ति में माता को भी पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। अपने परिवार तथा समाज में सभी भील सामाजिक नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार अब होने लगा है, कृषि एवं वृक्षारोपण की ओर भी इनका ध्यान आकर्षित किया गया है।

मध्य प्रदेश में गोंड जाति के आदिवासी छाल के वस्त्र पहनते थे परन्तु आधुनिक सभ्यता ने इन्हें भी प्रभावित किया क्योंकि अब ये सूती वस्त्र पहनने लगे हैं। इनकी स्त्रियां कमर के ऊपर वस्त्र धारण नहीं करती हैं। गोंड शरीर गुदवाने के शौकीन होते हैं तथा स्वभाव से लज्जालु होते हैं। गोंड तीन वर्गों में बंटे होते हैं धुर गोंड, हुस्त गोंड तथा राज गोंड। मुखिया बनने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्याशी को राज-गोंड परिवार का सदस्य होना चाहिए।

बिहार के संथाल वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति विशेष रूप से सजग हैं। शिक्षा का प्रचार भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। विभिन्न धार्मिक संस्थाओं एवं राज्य सरकार ने शिक्षा का प्रचुर प्रसार किया है। बिहार राज्य में प्रतिभावान् बालकों के लिए नेतरहाट विद्यालय संथालों की बस्ती के समीप ही खोला गया। अनेक संथाल नवयुवक एवं नवयुवतियां शिक्षा जगत में प्रसिद्धी पाने में लगे हैं। पी.एच.डी. स्तर तक की योग्यता वाले संथाल बिहार में विद्यमान हैं।

भारतीय शासन व्यवस्था ने जहां अनेक कार्य किए हैं वहां आदिवासियों के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने के सतत् प्रयास किए जा रहे हैं। आदिवासियों के आवास स्थान जंगल में होने के कारण इनकी आय के मुख्य स्रोत जंगल में उत्पन्न सामग्री हैं। ये आदिवासी सुदूर पर्वतीय प्रदेश में भी विद्यमान हैं जहां इन मनु पुत्रों को प्रकृति की कृपा पर आश्रित रहना पड़ता है। इनके पास कृत्रिम साधनों का नितान्त अभाव है। पारंपरिक विधि से कृषि कार्य करके भी अपनी जीविकोपार्जन कर लेते हैं। भारत सरकार शिक्षा के

सन्थाल शिकारियों का एक समूह

प्रचार-प्रसार का भरसक प्रयत्न कर रही हैं परन्तु यहां साक्षरता की दर निम्न हैं। निर्धनता उन्मूलन के प्रयास में सरकार आदिवासियों को विशेष महत्व दे रही है। इनकी सहायता करने के लिए अनेक विशेष कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं, जिनमें महत्वपूर्ण कार्यक्रम निम्नलिखित हैं:—

1. जंगलों के उत्पादन को काटकर बेचने से जो धनराशि मिलती थी उसका अधिकांश भाग ठेकेदार हड़प लेते थे। अब ठेकेदारी प्रथा का उन्मूलन किया जा रहा है।

2. जगलात के उत्पादनों का आदिवासियों को पूर्ण लाभ हो सके इसलिए सरकार सहकारी समितियों को पूर्ण प्रोत्साहन दे रही है। सहकारी समितियों का गठन तीव्र गति से किया जा रहा है।

3. ऐसी योजनाएं तैयार कर ली गई हैं, जिनमें सहकारी भूमि को आदिवासियों के लिए आबंटित किया जायेगा। इस भूमि पर वे वृक्षारोपण करके अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकेंगे। वृक्षारोपण करने वाले कृषकों को सरकार ने मासिक भत्ता देना आरंभ कर दिया है। यह भत्ता तब तक दिया जाएगा जब तक उनके द्वारा रोपे गए वृक्षों से आमदनी होनी आरंभ होगी। सरकार समग्र व्यय-भार वहन कर रही है तथा उत्पादन राशि सरकार द्वारा उत्पादनकर्ताओं में वितरित की जाती है। आदिवासियों को यह प्रोत्साहन दिया जा रहा है कि ये अच्छे वृक्षों की पौध उगाएं। वे जो पौध उगाते हैं, उसे सरकार अच्छे मूल्य पर ले लेती है। इनकी आर्थिक स्थिति दिन-प्रति-दिन अच्छी होती जा रही है।

4. सरकार आदिवासियों को गृह उद्योग स्थापित करने के लिए भी प्रोत्साहित कर रही है। टोकरी निर्माण, सिल्क (रेशम) उत्पादन एवं वस्त्र निर्माण, सींग के सजावट उपकरण आदि ऐसे गृह-उद्योग हैं जिन्हें अपनाकर आदिवासी भाई-बहन आर्थिक स्थिति सुधार सकते हैं।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, त्रिपुरा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह तथा गोवा, दमन एवं दीव में आदिवासी क्षेत्रों के विकास के कार्यक्रम बनाए गए जिनका मुख्य उद्देश्य यह था कि आदिवासी क्षेत्रों तथा अन्य क्षेत्रों के विकास के अन्तर को कम किया जाए और आदिवासी क्षेत्रों के निवासियों के जीवन स्तर को सुधारा जाए।

उक्त उद्देश्य की सम्प्राप्ति के लिए सरकार हर प्रकार के शोषण का उन्मूलन करने का प्रयास कर रही है तथा

कथित सभ्य लोग उन्हें अधिक लगान पर भूमि देकर उनका शोषण करते हैं इसलिए सरकार आदिवासियों को भूमि आबंटित कर रही है। जो लोग व्याज पर रुपये का लेन देन करते हैं, सहकारी बैंक खोलकर सरकार उनसे भी छुटकारा दिला रही है। वन उत्पादन का लाभ सहकारी समितियों के माध्यम से अब आदिवासियों को सीधा प्राप्त हो सरकार ऐसा करने के लिए भी प्रयत्नरत है। आदिवासी क्षेत्रों के निवासियों के भौतिक विकास के लिए केन्द्रीय मंत्रालयों से भी आर्थिक सहायता भेजी जा रही है। छठी पंचवर्षीय योजना में आदिवासियों के आर्थिक विकास के लिए 470 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। कई राज्यों एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों के आदिवासियों के विकास के लिए 180 परियोजनाएं तैयार की गई हैं। इन सभी परियोजनाओं में विधिवत् कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। यह भी निश्चय किया गया है कि उनके हितों की रक्षा, वैधानिक एवं प्रशासनिक सहायता प्रदान करके की जाये। हर्ष का विषय है कि वर्तमान परिस्थितियों में उनके रहन सहन का स्तर ऊंचा उठने लगा है। आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में आदिवासी शोध संस्थान तथा प्रशिक्षण संस्थाएं कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं क्योंकि इन संस्थाओं के माध्यम से कुशल कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण हो रहा है और विकास कार्यों का निरीक्षण एवं मूल्यांकन भली भांति किया जा रहा है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि निकट भविष्य में हमारे आदिवासी भाई-बहन इतने विकसित हो सकेंगे कि वे राष्ट्र के आर्थिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में पूर्ण योगदान दे सकेंगे।

आदिवासी मित्रों के संबंध में नगालैंड के निवासियों की चर्चा विशेष महत्व रखती है क्योंकि उनकी वेशभूषा, भाषा, भोजन एवं परंपराएं अद्भुत आकर्षण के विषय हैं। असम के पूर्व और मणिपुर के उत्तर में 16.5 सहर वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल वाला यह राज्य एक पर्वतीय प्रदेश है। सीढ़ीनुमा खेत वर्षा के अधिक्य से सदैव हरे भरे एवं प्राकृतिक सुषमा दर्शक का मन मोह लेते हैं।

भारत मंगोली नस्ल के लगभग 4 लाख नगाओं की वैयक्तिक विशेषताएं भी उतनी ही आकर्षक है जितनी प्राकृतिक संपदा। स्वस्थ एवं सुडौल शरीर व ताम्रवर्ण उनके पौरुष का परिचय देता है। कोन्यक, सेमा, आओ व अंगामी इनकी प्रमुख जातियां हैं। उपजातियों का परम्परागत जीवन भिन्न होता है। अपने कबीले के प्रति निष्ठावान में नगा शत्रु का डटकर मुकाबला करते हैं।

इनके छोटे-छोटे गांव पत्थर या लकड़ी की दीवारों से घिरे रहते हैं। प्रत्येक मौहल्ले का मुखिया अनुशासन का उत्तरदायित्व संभालता है जितना महान व्यक्ति होता है उसका उतना ही विशाल भवन होता है। मकान लकड़ी का बना होता है तथा अन्दर तरह-तरह की वस्तुओं से सजावट होती है। सजावट के उपकरणों में आखेटों के स्मृति चिन्ह मुख्य होते हैं। कुछ विशाल भवन होते हैं जिनको मोरंग कहते हैं। इन "मोरंगो" में गांव के सभी अविवाहित व्यक्ति रहते हैं, उत्सव और सभाएं आयोजित की जाती हैं तथा बालकों की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है।

'नग' शब्द पर्वत का पर्याय है तथा ये पर्वतीय प्रदेश के निवासी हैं, इसलिए इन्हें नगा कहा जाता है। साक्षर आकर्षक बनावट एवं रंगों के पारम्परिक वस्त्र धारण करते हैं। ये वस्त्र नगा महिलाएं स्वयं बुनती हैं।

वनों में भीतर के निवासी नगा आज भी शेर और चीते के चर्म पहनते हैं, पशुओं के सींगों के गहने धारण करते हैं, बालों में कौड़ियों की मालाएं पिरोते हैं और कन्धे पर शेर के बाल तथा हाथ में भाला लेकर वन में भ्रमण करते हैं।

नगा कुशल आखेटक होते हैं। तीरंदाजी से शिकार करना इनकी प्रतिभा का परिचायक है। विशालकाय पशुओं को भी ये गड्ढे खोदकर, पत्तियों से ढ़ककर गड्ढे में गिरा देते हैं और अन्दर हथियार पहले ही रोप देते हैं। जानवर उसमें गिर कर मर जाते हैं। फिर पशु को मोटी रस्सियों से बांधकर बाहर निकाल लिया जाता है।

नगाओं में विवाह पद्धति भी सराहनीय है। केवल वही युवक विवाह योग्य ठहराया जाता है जो वीर हो। नगा युवक, युवतियां अपने जीवन साथी का चयन स्वयं करते हैं तब माता-पिता की अनुमति लेते हैं।

वे अपने गांव की सीमा के भीतर शिकार करना तथा दूसरे गांव की सीमा के भीतर यदि वन्य पशु मारा जाए तो शिकार का आधा भाग दूसरे गांव के लोगों को दे देना उनकी चारित्रिक गरिमा का परिचायक है।

नगा जाति कृषि में विशेष रुचि ले रही है। वन भूमि को कृषि योग्य बनाया जा रहा है। आलू, धान, साग-सब्जी आदि का उत्पादन नवीन विधियों द्वारा लिया जा रहा है।

आधुनिक युग में अन्य आदिवासी जातियों की तरह नगाओं में भी परिवर्तन आ रहा है। शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार अन्ध विश्वासों को कम कर रहा है। वे जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना रहे हैं। भारत के अन्य लोगों के साथ भी सम्पर्क स्थापित कर रहे हैं। प्रकृति की गोद के निवासी नगा अब सांस्कृतिक मूल्यों को अपना रहे हैं। केन्द्र सरकार ने राज्य सरकारों को विशेष अनुदान देकर चिकित्सालय, शिक्षण संस्थाएं, जल-वितरण आदि की अच्छी व्यवस्था की है तथा कृषि एवं पशुओं के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

1957 ई० के पश्चात् आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा पर अत्याधिक बल दिया गया है तथा आश्चर्यजनक उन्नति भी हुई है। प्राथमिक विद्यालय, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। तकनीकी शिक्षा के लिए भी विद्यालय खोले जा रहे हैं। कोहिमा नगर की शिक्षा व्यवस्था की तुलना किसी भी अच्छे नगर की शिक्षा व्यवस्था से की जा सकती है। यहां हिन्दी अध्ययन की भी व्यवस्था है। विभिन्न समुदाय अपने विद्यालय बना रहे हैं। सम्प्रदायों की स्वयं सेवी संस्थाएं धन एकत्रित करके महाविद्यालय भी खोल रही है। विकास कार्यों के लिए सरकार का भी पूर्ण सहयोग प्राप्त है। विद्युत का विस्तार तीव्र गति से बढ़ रहा है।

उपर्युक्त विवेचन से दृष्टव्य है कि अब आदिवासी समाज उन्नतिशील एवं आधुनिक होता जा रहा है। कर्म के प्रति निष्ठा, समाज के प्रति सत्यनिष्ठ व्यवहार तथा सरलता वस्तुतः अनुकरणीय है। ये जीवन यात्रा के आदर्श यात्री हैं।

**आर-105, वाणी विहार,**
**नई दिल्ली-110059**

**शेष पृष्ठ 33 पर**

जो आदिवासी परिवार के सदस्य सहज ही जुटा लेते हैं। उत्पादन की विपणन सम्बन्धी, कठिनाईयों से आदिवासी परिवार आसानी से बच जाते हैं क्योंकि कृषि विभाग के कार्यकर्ता आदिवासी परिवारों के घरों पर जा कर तौल कर ककून ले लेते हैं और उसका भुगतान भी घर पर जा कर ही किया जाता है। इसी प्रकार आदिवासी परिवार ऋण आदि लेने से सम्बन्धित लिखित कार्यवाही से भी बच जाता है। इसमें किसी भी प्रकार के माध्यमों का कोई कार्य नहीं रहता है।

कृषि विभाग द्वारा इस परियोजना में एक और आयाम भी रीलिंग केन्द्र स्थापित करके जोड़ दिया गया है। यह केन्द्र आदिवासी इलाके में ही प्रारम्भ किया गया है तथा आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करके आदिवासी युवा आसानी से प्रतिदिन 14-16 रु० तक अर्जित कर सकता है। यहाँ मजदूरी करने वाले श्रमिक आस पास के गाँवों से प्रतिदिन आते हैं और शाम को वापस घर लौट जाते हैं। इसके अलावा झाड़ौल में एक स्वयं सेवी संस्था ने रेशम की साड़ी बनाने का उमक्रम भी प्रारम्भ किया है और इसका समस्त कार्य आदिवासी लोगों द्वारा ही सम्पन्न किया जा रहा है।

अब तक रेशमकीट पालने को 12 गाँवों के 638 आदिवासी परिवारों के लिए लागू किया गया है। रेशम कीट पालन एवं ट्राइसेम योजना का तुलनात्मक अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विकास के लिए बनाई गई परियोजनाओं में आदिवासियों की विशिष्टताओं, उनकी परम्परा व मूल्यों का समावेश भी किया जाना अपरिहार्य हो जाता है। सामान्य पिछड़े वर्ग के लिए बनाई गई परियोजनाएँ आदिवासी परिवारों के उत्थान में अधिक सफल नहीं हो सकेगी। इसके विपरीत आदिवासी संस्कृति परिप्रेक्ष्य में योजनाएँ बनायी जा कर क्रियान्वित की जाये तो केवल उन्हें अल्पकाल में आर्थिक लाभ ही होगा वरन् दीर्घकाल में आदिवासी परिवारों का गैर आदिवासियों के प्रति सन्देह एवं संशय कम होगा तथा समाज की मुख्य धारा से भी वह आसानी से जुड़ सकेगें। इसका प्रदर्शन प्रभाव भी आदिवासी समाज पर पड़ेगा और कुछ परिवारों को लाभ अर्जित करते देख कर अन्य परिवार भी विकास योजनाओं को सहज ही अपना सकेंगे।

**सहायक प्राध्यापक**
**हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य**
**लोक प्रशासन संस्थान**
**परिसर-उदयपुर-313001**

# मध्य प्रदेश में जनजातीय लोगों में शिक्षा का प्रसार

डा. एस.एस. पवार
पी. भुवेन्द्रन

इधर कुछ वर्षों से शिक्षा प्रक्रिया को समाज के विकास के साथ जोड़ने पर अधिक बल दिया जाने लगा है। विकास का उद्देश्य है किसी निश्चित लक्ष्य को सामने रखकर समाज की प्रगति करना। ये लक्ष्य व्यक्तियों और समाज में कुछ खास पहलुओं में परिवर्तन लाने के रूप में होते हैं। किसी भी समाज में शिक्षा के माध्यम से ही विकास के इन उपायों को लागू करने के प्रयास किए जाते हैं।

वास्तव में शास्त्रीय अर्थशास्त्रियों के समय से ही शिक्षा और आर्थिक विकास में अभिन्न संबंध के सिद्धांत को मान्यता मिली हुई है। इस सिद्धांत में बुनियादी धारणा यह है कि शिक्षा राष्ट्रीय विकास में योग देने के सक्षम है। यह मान लिया गया है कि शिक्षा और आर्थिक प्रगति राष्ट्रीय जीवन के परस्पर आश्रित तत्व हैं।

शिक्षा शब्द की परिभाशा अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग ढंग से की है। महात्मा गांधी के अनुसार "शिक्षा से मेरा तात्पर्य है बच्चे में विद्यमान श्रेष्ठ क्षमताओं तथा मनुष्य के तन, मन और आत्मा का पूर्ण विकास। साक्षरता न तो शिक्षा का आदि है और न अन्त।" भूतपूर्व राष्ट्रपति और शिक्षा विद् डा. जाकिर हुसेन के शब्दों में "शिक्षा वस्तुपरक संस्कृति का व्यक्तिगत पुनर्जीवीकरण है। यह वस्तुपरक मन का व्यक्तिपरक मन में रूपान्तरण है। यह मूल्यों की व्यक्तिगत संगठित अनुभूति है जो संबंधित व्यक्ति की अनुभूति में उतर सकने योग्य मूल्यों के प्रतीक है।"

गुड द्वारा संकलित "शिक्षा का शब्द कोष" पुस्तक में शिक्षा की परिभाषा यों की गई है "यह उस प्रक्रिया तथा सकल योग है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समाज में अपनी योग्यताओं, दृष्टिकोण तथा रचनात्मक महत्व के आचरण के अन्य रूपों का विकास करता है और उनका पालन करता है।

इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा तन, मन और संस्कृति के विकास में सहायक है और अंततः यह व्यक्ति और समाज का कल्याण करती है, जिसके माध्यम से लोग अपने प्रयासों के आर्थिक लाभों का आनंद ले सकते हैं।

शिक्षा और साक्षरता दो अलग-अलग शब्द हैं। यह आवश्यक नहीं कि जो व्यक्ति साक्षर है उसने औपचारिक शिक्षा प्राप्त की हो या किसी निश्चित स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की हो। किसी राष्ट्र का आर्थिक विकास सदैव शिक्षा पर निर्भर होता है। यदि लोग अनपढ़ हैं तो आर्थिक नीतियां भली प्रकार से लागू नहीं हो सकतीं।

भारत में 60 प्रतिशत से अधिक अशिक्षित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में हालत बदतर है। देश की कुल जनसंख्या में 7.76 प्रतिशत आदिवासी हैं। स्वतंत्रता के 40 वर्ष बाद भी इनमें साक्षरता की दर और आर्थिक विकास में इनकी भागीदारी संतोषजनक नहीं है।

नगालैंड, मेघालय, मिजोरम और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में अधिकतर लोग अनपढ़ हैं। जब अशिक्षा के कारण लोग सरकारी नीतियों को समझ ही नहीं पाएंगे तो उनका आर्थिक विकास कैसे संभव है ?

मध्य प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि वहां शिक्षा को कितना महत्व देने की जरूरत है।

1981 की जनगणना के अनुसार साक्षरता की औसत राष्ट्रीय दर 36.23 प्रतिशत थी जो 1951 में 16.67 प्रतिशत थी। मध्य प्रदेश की साक्षरता दर राष्ट्रीय दर से 27.82 प्रतिशत कम थी। 18 राज्यों और केन्द्र शासित क्षेत्रों की साक्षरता दर राष्ट्रीय दर से अधिक है। सातवीं योजना में शिक्षा

के सुधार पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। समाज के कमजोर वर्गों, लड़कियां, अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों के लोगों को शिक्षित करने पर अधिक जोर दिया जा रहा है। योजना आयोग ने छठी योजना में 2,524 करोड़ रु. शिक्षा के लिए मंजूर किए। यह कुल योजना परिव्यय का 2.6 प्रतिशत है।

1983-84 के बजट के अनुसार केन्द्र और राज्यों के शिक्षा पर 7,105 करोड़ रु. के खर्च का प्रावधान था जो कुल बजट का 13.3 प्रतिशत था। इसमें से 948 करोड़ रु. केवल जनजातीय लोगों की शिक्षा के लिए निर्धारित थे।

1981 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश की कुल आबादी 5,21,78,844 थी। इसमें आदिवासियों की संख्या 1,19,87,031 थी। यह राज्य की कुल जनसंख्या का 22.97 प्रतिशत है। राज्य में पुरुष आदिवासियों की संख्या 6,00,3,304 24.10. और महिलाओं की संख्या 5,98,3.727(22.33%) प्रतिशत) थी।

भारत में अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता की दर 16.35 प्रतिशत थी जबकि मध्य प्रदेश में यह दर 10.68 प्रतिशत थी। राज्य की औसत साक्षरता दर 27.82 प्रतिशत थी जो आदिवासियों की साक्षरता दर से अधिक थी। पुरुष आदिवासियों में साक्षरता दर 17.74 प्रतिशत थी जबकि महिलाओं की केवल 3.60 प्रतिशत थी।

भारत में आदिवासी ग्रामीण जनसंख्या में साक्षरता दर 14.92 प्रतिशत थी, जबकि मध्य प्रदेश में यह केवल 10.05 प्रतिशत थी। इसी प्रकार शहरों में मध्य प्रदेश में आदिवासियों में पुरुषों की साक्षरता दर 38.64 प्रतिशत तथा महिलाओं में 15.18 प्रतिशत थी जबकि पूरे भारत में यह पुरुषों में 47.6 प्रतिशत तथा महिलाओं में 14.14 प्रतिशत थी।

मध्य प्रदेश के पश्चिमी जनजातीय क्षेत्र में पांच जिलों में से पूर्व निमार साक्षरता में सबसे आगे है। यहां पर 8.01 प्रतिशत लोगों ने शिक्षा प्राप्त की। साक्षर लोगों में 88.75 प्रतिशत पुरुष और 11.22 प्रतिशत महिलाएं थीं। उल्लेखनीय बात यह है इन लोगों में 89.45 प्रतिशत लोग गांवों के हैं।

झाबुआ जिले में औसत साक्षरता का प्रतिशत 10.23 था, जो कि राज्य के 27.82 प्रतिशत से काफी कम है। इस जिले में आदिवासियों में साक्षरता 4.12 प्रतिशत थी। जिले में कुल आबादी 7,95,168 थी जिसमें 6,63,796 आदिवासी थे। इनमें केवल 27,314 लोगों ने शिक्षा प्राप्त की। इस जिले की विशेषता यह है कि यहां पूर्व निमार जिले की तुलना में शिक्षित महिलाएं अधिक थीं। पश्चिम निमार जिले की आबादी 7,09,424 थी, जिसमें से 6.32 प्रतिशत लोग शिक्षित थे। महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत केवल 14.23 था।

धार जिले की आबादी 10,57,460 थी, जिसमें 5,50,539 आदिवासी थे। यह कुल जनसंख्या का 52.06 प्रतिशत है। इस जिले में साक्षरता की दर 18.64 प्रतिशत थी। आदिवासियों में केवल 5.54 प्रतिशत लोग साक्षर थे। 27,228 आदिवासी पुरुष शिक्षित थे जबकि महिलाओं में 10.69 प्रतिशत शिक्षित थीं।

रतलाम की कुल जनसंख्या में शिक्षित आदिवासियों का प्रतिशत 4.85 प्रतिशत था। यहां भी अन्य जिलों की भांति महिलाओं के मुकाबले पुरुष अधिक संख्या में शिक्षित थे। शहरी इलाकों में केवल 812 तथा गांवों में 516 महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त की। जिले की आबादी 7,82,729 थी जिनमें 1,68,203 आदिवासी थे।

इन सभी जिलों का स्वरूप ग्रामीण है और आदिवासी आबादी मुख्यतया गांवों में ही केन्द्रित है। इन जिलों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि महिलाओं में साक्षरता की दर बहुत कम थी। सरकार वहां साक्षरता का स्तर राष्ट्रीय औसत दर से ऊपर लाने की हर संभव कोशिश कर रही है। यह सर्वज्ञात तथ्य है कि महिलाएं मां के रूप में सामान्य विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। मां को शिक्षित करने का अर्थ है समूचे परिवार को शिक्षित करना। जिस देश मे महिलाएं अशिक्षित रहती हैं, उसके विकास का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो सकता। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही देश की महिलाओं को शिक्षित करने पर बल दिया जाता रहा है। 1986 की नई शिक्षा नीति में महिला शिक्षा पर विशेष जोर दिया गया है। इन प्रयासों के फलस्वरूप महिला शिक्षा की दर 1950-51 में 7.93 प्रतिशत से बढ़कर 1981 में 24.32 हो गई। ग्रामीण इलाकों में स्त्रियों को शिक्षित करना और भी अधिक आवश्यक है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में महिला साक्षरता दर 24.82 प्रतिशत थी।

जबकि कुछ राज्यों में यह दर 11 प्रतिशत थी। मध्य प्रदेश में यह 36 प्रतिशत थी।

मध्य प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र के आदिवासी अभी सभ्यता के दुर्गुणों से बचे हुए हैं और उनके जनजीवन में सादगी और सरलता है। अन्य समुदायों की तुलना में उनमें शिक्षा की दर कम है। इस क्षेत्र में औसत साक्षरता दर को राष्ट्रीय औसत दर से ऊपर लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में किए गए अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित सुझावों पर अमल किया जा सकता है।

आश्रम विद्यालयों के निर्माण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर अधिक आबादी वाले इलाकों में आवश्यक सुविधाएं जुटाने की आवश्यकता है। आश्रम विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम यथासम्भव आदिवासी भाषाएं होना चाहिए। अध्यापकों को इन भाषाओं का सच्चा ज्ञान होना चाहिए।

दूसरा सुझाव यह है कि दो-तीन वर्ष की शिक्षा के बाद शिक्षा का माध्यम कोई क्षेत्रीय भाषा बना दी जानी चाहिए। बाद में राष्ट्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। धीरे-धीरे इन लोगों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ा जा सकता है।

आश्रम विद्यालयों के अध्यापकों की नियुक्ति आदिवासी लोगों में से ही की जानी चाहिए। यदि ऐसा संभव न हो तो सेवा भावी लोगों को अध्यापक के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें अच्छा वेतन तथा अन्य सुविधाएं दी जानी चाहिए। शिक्षा निःशुल्क हो और बच्चों को दोपहर का भोजन तथा छात्रवृत्ति आदि भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए ताकि अधिक से अधिक बच्चे पढ़ने आएं।

चौथा उपाय प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करना है। इसमें भी आदिवासी महिलाओं पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिए प्रतिदिन शाम को 4 से 6 बजे तक कक्षाएं लगाई जा सकती हैं।

पढ़ाई के दौरान लोककथाएं और अन्य रोचक कहानियां सुनाई जानी चाहिए। बर्तनों के रखरखाव, मुर्गीपालन, बागवानी जैसे व्यावहारिक कामों की जानकारी देना भी उपयोगी हो सकता है। इस तरह लोगों में यह भावना आएगी कि बच्चों को शिक्षित करना उनके लिए लाभदायक है।

आदिवासियों को रुपये पैसे के हिसाब-किताब का प्रशिक्षण देना भी आवश्यक है। इसमें बचत और पूंजी निवेश के बारे में जानकारी दी जा सकती है। इससे ये लोग आत्मनिर्भर बन सकेंगे। आदिवासी महिलाओं में साक्षरता केवल निःशुल्क शिक्षा के जरिए ही लाई जा सकती है। मध्य प्रदेश सरकार ने ऐसी ही नीति तैयार की है। यदि शिक्षा में काम धन्धों का प्रशिक्षण भी शामिल हो तो अधिक से अधिक आदिवासी पुरुष व महिलाएं शिक्षा के प्रति आकर्षित होंगी। इसके लिए जिला स्तर पर व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र खोले जा सकते हैं, जिनमें गरीब बच्चों को लकड़ी का काम, खिलौने बनाना, सिलाई, प्लास्टिक आदि काम सिखाए जा सकते हैं।

आदिवासियों को तकनीकी शिक्षा भी दी जानी चाहिए। तकनीकी शिक्षा के साथ-साथ काम धंधा प्रारम्भ करने के लिए वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए। आदिवासियों के परम्परागत उद्योग धंधे चलाने के लिए भी वित्तीय सहायता दी जा सकती है। आदिवासी महिलाओं को सिलाई-बुनाई, टोकरी बनाना जैसे काम सिखाकर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

इस प्रकार ये सभी उपाय करके मध्य प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में आदिवासियों को शिक्षित और प्रशिक्षित करके उनके आर्थिक और सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन लाया जा सकता है। यदि शिक्षा के इन आर्थिक पहलुओं पर भली प्रकार से अमल किया जाए तो इसके ठोस परिणाम सामने आएंगे और आदिवासी लोगों के उत्थान का स्वप्न शीघ्र पूर्ण हो सकेगा।

**अनुवाद : सुभाष चन्द्र सेतिया**
**सी-7/134 ए,**
**केशवपुरम, लारेंस रोड,**
**दिल्ली-110035**

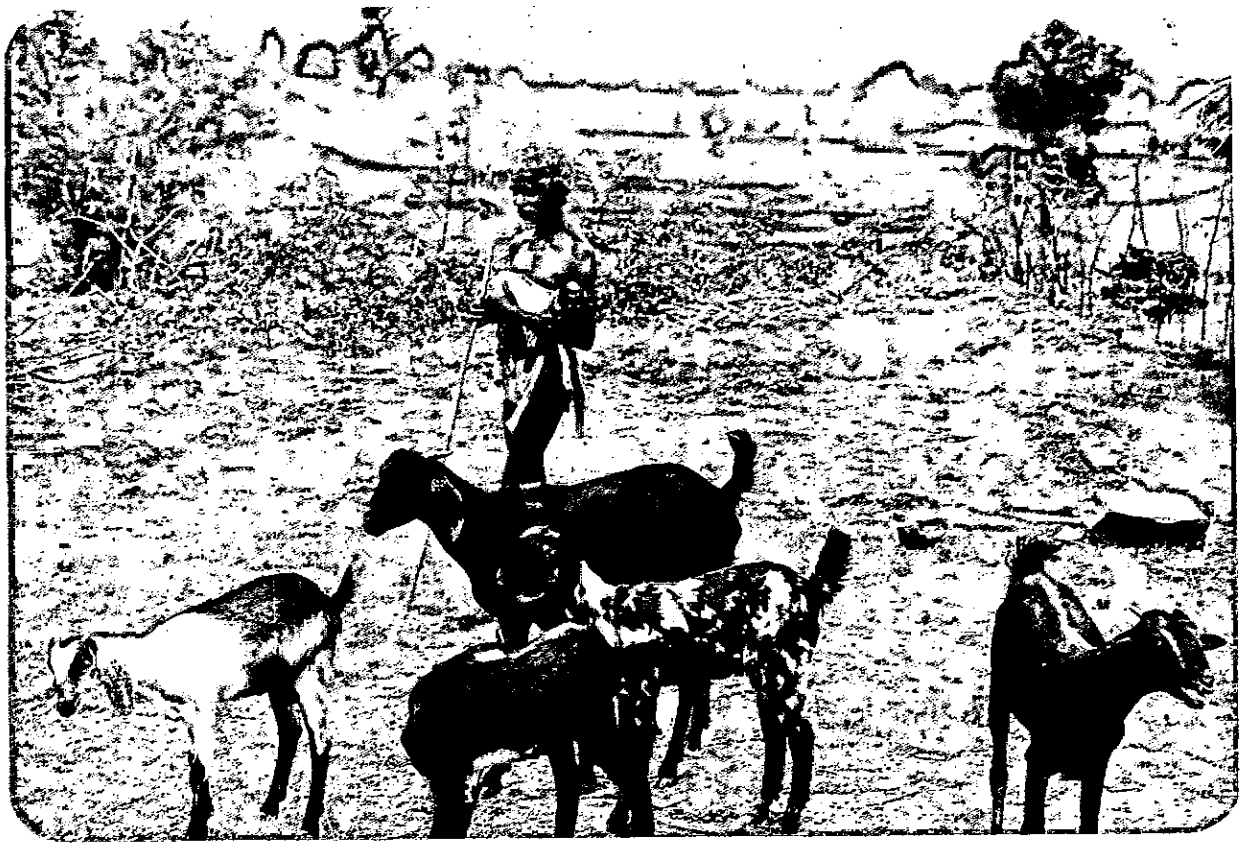

बकरियां - आदिवासियों की आजीविका का साधन

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ.. नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

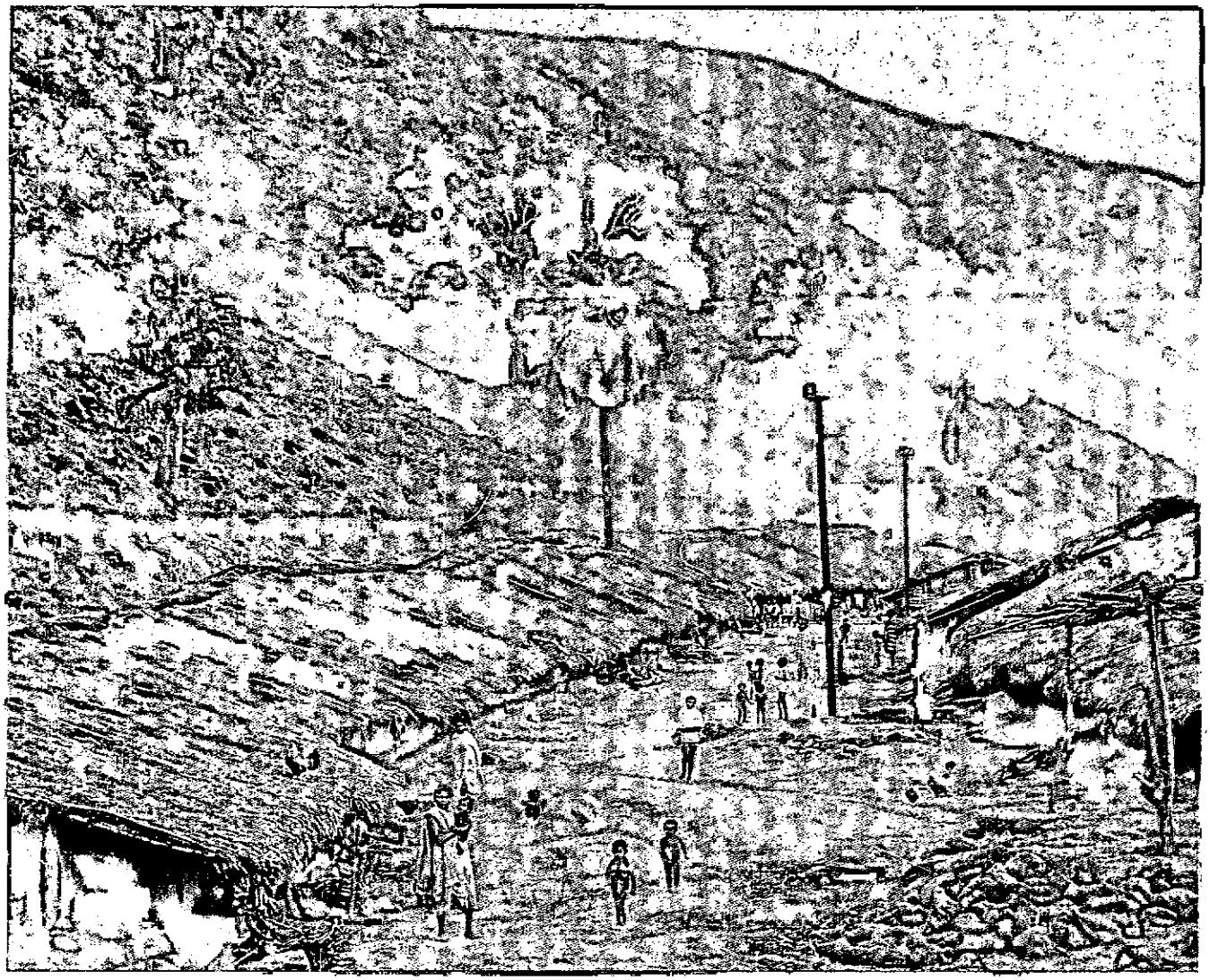

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित